# शाक्तागम का परिचय

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से शक्ति की उपासना होती आ रही है। अम्बिका,कात्यायनी,विश्वेश्वरी,वैष्णवी,नारायणी,गौरी,कालिका,ब्राह्मणी,चण्डी, माहेश्वर कुमारी, कौशिकी, वाराही, शिवदूति, भगवती, चामुण्डा, ध्रुवा, सरस्वती, दुर्गा आदि नामों से शक्ति की पूजा-अर्चना की जाती है। देवी के रूप में शक्ति की अनन्त क्षमताओं का,इसके दिव्य एवं अलौकिक प्रभाव और प्रताप का गायन किया जाता है।[१]

माता के मन्दिरों में,चाहे उत्तर भारत में हो या दक्षिण में,पूर्व में हो या पश्चिम में शक्ति की पूजा की जाती है। शक्ति -पूजा के ५१ केन्द्र भारत में तथा भारत के बाहर कुछ अन्य देशों में विद्यमान हैं। इन शक्ति केन्द्रों को शक्तिपीठ या सिद्धपीठ कहा जाता है। ये शक्तिपीठ हैं- किरीट,वृन्दावन,करवीर,श्रीपर्वत,वाराणसी,गोदावरी तट, शुचि पञ्चसागर,ज्वालामुखी,भैरव पर्वत,अट्टहास,जनस्थान,कश्मीर,नन्दीपुर,श्री शैल,नलहटी,मिथिला, रत्नावली,प्रभास,जालन्धर, रामगिरि,वैद्यनाथ,वक्त्रेश्वर, कनकाश्रम, बहुला,उज्जयिनी,माणिवेदिक, प्रयाग,उतकल,काञ्ची, कालमाधव, शोण,कामगिरि,जयन्ती,मगध,त्रियोता, त्रिपुरा,विभस, कुरुक्षेत्र, युगाछा, विराट, कालीपीठ,मानस(तिब्बत) श्रीलंका,गण्डकी (नेपाल) नेपाल,हिंगुला (पाकिस्तान) सुगन्धा (बंगलादेश) करतोया,(बंगलादेश) चट्टल (बंगलादेश) तथा यशोर (बंगलादेश)।[२]

---

[१] बद्रीनाथ शुक्ल,मार्कण्डेय पुराण-एक अध्ययन,पृ.५३

[२] कल्याण शक्ति उपासना अंक,पृ.३७४-१७८(डॉ.बलदेव सिंह)

इस सिद्धपीठों के नामोल्लेख से यह स्पष्ट है कि शक्ति उपासना सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी होती है। शक्ति की उपासना भारतवर्ष में कितने प्राचीन समय से हो रही है, यह जानने के लिए जोधपुर (राजस्थान) के दधिमती माता के शिलालेख को एक महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस शिलालेख में यह श्लोक उत्कीर्ण है-

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।।[१]

उक्त शिलालेख पर संवत् २८९ उत्कीर्ण है जो प्रसिद्ध विद्वान् भण्डारकर के अनुसार गुप्तसंवत् है।[२]

गुप्तसंवत् २१९ वर्ष जोड़ने से ईसवी सन् बन जाता है। इस प्रकार इस शिलालेख का समय बनता है ६०८ ईसवी। यह स्पष्ट करना उचित होगा कि उक्त श्लोक मार्कण्डेय पुराण से उद्धृत है। मार्कण्डेय पुराण का रचनाकाल ४०० से ५०० ई.के मध्य माना जाता है।[३] मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा सप्तशती के ५८६ श्लोक दिये गये हैं जिनमें देवी दुर्गा का,देवी या शक्ति तत्त्व का वर्णन किया गया है।

देवता शक्ति-रूपा इस देवी की वन्दना करते हुए कहते हैं कि-जो देवी सभी प्राणियों में विष्णु-माया रूप में कही जाती है,उसे नमस्कार है जो देवी सब

[१] दु.स.अ.११/१०
[२] आचार्य बलदेव उपाध्याय,पुराण विमर्श,पृ.५५१ से उद्धृत
[३] आ.बलदेव उपाध्याय,पुराण विमर्श ,पृ.५५१

प्राणियों में चेतना नाम से कही जाती है,उसको नमस्कार है, जो देवी इन्द्रियों और प्राणियों की अधिष्ठात्री है,उनको हमारा नमस्कार है।[1]

देवी-तत्त्व के इस संक्षिप्त से विवेचन तथा मार्कण्डेय पुराण के साक्ष्य के आधार पर इतना तो स्पष्ट है कि शक्ति की उपासना ४००ई. से बहुत पहले से यहाँ प्रचलित थी। ६००ई. के आस-पास तो शक्ति-पूजा सम्बन्धी श्लोक शिला लेखों के रूप में उत्कीर्ण होने लगे थे। शक्ति के उपासक शाक्त कहलाते हैं। मार्कण्डेय पुराण ही नहीं,कुछ अन्य पुराणों में भी शक्ति उपासना का वर्णन हुआ है। वामन पुराण में भी शाक्त मत की महता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शक्ति को सारे संसार की स्वामिनी बताया गया है। वस्तुतः यह ससम्पूर्ण संसार ही भगवती का रूप है।[2]

शक्ति की प्रधानता को मानने वाले शाक्त कहे जाते हैं।शाक्त मत में परब्रह्म को संविद् नाम से जाना जाता है। इसी से षडध्वात्मक जगत् का विस्तार होता है। शैव भी इसका अपलाप नहीं कर सकते।शाक्त मत के अनुयायी इस शक्ति को ही परमतत्त्व के रूप में उपासना करते हैं। यह संविद् स्वरूपा भगवती अपने भीतर विद्यमान जगत् को बाहर प्रकट कर देती है,यही शाक्त मत का रहस्य है। वामकेश्वर दर्शन में त्रिपुरा नाम की परा-संविद् ही परब्रह्म है।

महार्थमञ्जरीकार महेश्वरानन्द के परमगुरु शिवानन्द ने त्रिपुरा सम्प्रदाय का उद्भव कश्मीर में माना है। सम्प्रदायस्य कश्मीरोद्भूतत्वात् [3]

---

[1] मा.पु.अ.८२/१३२

[2] वामन पुराण का सास्कृतिक अध्ययन-डॉ.श्रीमती मालती त्रिपाठी,पृ.११९

[3] नित्याषोडशिकार्णव की टीका ऋजुविमर्शिनी पृ.११४

दक्षिण देश के अनुयायी त्रिपुरा मत के आचार्यों में प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। तन्त्रालोक के व्याख्याता काश्मीराभिजन जयरथ वामकेश्वरीमत की व्याख्या में कहते हैं कि वस्तुतः ईश्वरशिव और विश्वावर्त नामक दो आचार्यों ने त्रिपुरा दर्शन का प्रवर्तन किया।

''काश्मीरेषु श्रीमान् विश्वावर्त एवास्य दर्शनस्य साक्षात् प्रवर्तयिता''[१] शैव और शाक्त तन्त्रों में विमर्श अथवा स्फुरत्ता (स्पन्द) शक्ति का ही व्यापार है। इस प्रकार स्पन्द कारिका में शाक्त दर्शन का व्याख्याता है।

कल्लट के शिष्य भट्ट प्रद्युम्न ने तत्त्वगर्भ स्तोत्र में शक्ति-पारम्य की स्थापना की है और काश्मीर के अद्वैतवादी शैव दर्शन के प्रतिष्ठापक सोमानन्द ने शिवदृष्टि के तृतीय आह्निक में इस मत का खण्डन किया है। कल्लट स्पष्ट ही शाक्त मत के आचार्य है। शाक्त-सम्प्रदाय में वाममार्ग एवं तन्त्रों के प्रयोग से एक विचित्र परिवर्तन हो गया।शैवों की काली-उपासना रहस्यपूर्ण हो गयी। शिव से पार्वती को विशेष महत्व मिल गया। बंगाल तथा आसाम की उपासना एवं नित्यके आचार सभी तन्त्रानुगामी हो गये। तान्त्रिक उपासना से प्रभावित होने के कारण ही शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय भी दक्षिण तथा वामभागों में विभक्त हो गये। पौराणिक आधार पर दक्षिण-मार्ग तथा कौलिकों के तन्त्रशास्त्र के आधार को लेकर वाममार्ग की उपासना चल पडी।शाक्तों के अभिवृद्धि के कारण देवों की पूजा अप्रधान हो गयी। शक्तियों में भी काली,दुर्गा, जगदम्बिका की उपासना का महत्व बढ़ गया। ममता-मोह से विरक्त होकर महर्षि मेधा के उपदेश से

---

[१] आचार्य विश्वावर्त का परिचय,पृ.४५४

समाधि ने देवी की आराधना कर, ज्ञान प्राप्तकर मुक्ति प्राप्त की थी । साधारण जन इस मार्ग को भूल गये। राजा सुरथ की भाँति सभी लोग राज्य तथा सावर्णिमनु जैसे ऐश्वर्य विशिष्ट बनने के लिए शक्ति-उपासना विशेषरूप से करने लगे।

शिव के शुक्ल वर्ण के अनुरूप उमा,गौरी ,सरस्वती तथा लक्ष्मी-जैसी गौरवर्ण की देवियाँ पूजा पाने लगी। प्रायः सात्त्विक प्रकृति के लोगों द्वारा इन देवियों का पूजन किया जाता है। शिव के काल रूप के कारण,जो कृष्ण वर्ण का है,काली,चण्डी,दुर्गा तथा चामुण्डा कृष्ण या श्यामलाकृति की पूजा प्रचलित हो गयी। शिव के १००८ नामों के सदृश,रूप-गुणों के सदृश देवी के १००८ नाम ख्यात हो गये।

शक्ति-उपासना १-काली, २ तारा,३ त्रिपुरा या षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावती, ८ मातङ्गी, ९ कमला या कमलात्मिका, १० बगलामुखी-इस दस महाविद्याओं का अत्यन्त महत्व है। वैष्णव -धर्म के दशावतारों की भाँति ही इनमें से प्रत्येक के उपासक पृथक् -पृथक् है। इनकी भी पूजा गोप्य मानी गयी है।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
मातङ्गी सिद्धविद्या च कथिता बगलामुखी।
एता दश महाविद्याः सर्व तन्त्रेषु गोपिताः।।

इनमें से कुछ के नाम भिन्न हैं किन्तु संख्या सर्वत्र दश ही है। इनमें से प्रथम दो''महाविद्या'' पाँच विद्या तथा अन्त की तीन 'सिद्धविद्या'' के नाम से ख्यात हैं। श्रीविद्या षोडशी को मानते है। ललिता,राजराजेश्वरी,महात्रिपुरसुन्दरी,बालापञ्चदशी आदि उनके अनेक नाम हैं। इन्हें आत्म --शक्ति माना जाता है। इनकी उपासना से भोग-मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

अन्य की उपासना से दोनों में से एक भोग या मुक्ति ही मिल सकती है। इनके स्थूल,सूक्ष्म,पर तथा तुरीय चार रूप हैं। इनके प्रमुख उपासक है-

मनुश्चन्दः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः ।।

द्रव्य, भाव ,स्थान, मन्त्रशुद्धि पर दृष्टि रखकर आणवी ,शाक्तेयी अथवा शाम्भवी (ज्ञानवती,क्रियावती,कलावती,वर्णमयी या बोधमयी) किसी भी प्रकार की दीक्षा ग्रहणकर गुरु,देवता तथा मन्त्रों में एकात्म्यभाव रखते हुए तथा बीज,कवच,न्यास,मुद्रा सभी का पालन करते हुए साङ्ग - कुमारी पूजन, नित्य सन्ध्या तर्पण,जप की विधियों से आत्म-समर्पण कर आराधना करने पर इनमें से किसी की उपासना अभीष्ट फल प्रदान करती है। इनमें से प्रत्येक के गुण ,स्वभाव,उपासना-प्रकार,अधिकारी एवं फल विभिन्न हैं।

देवी -उपासना में ''मातृका-पूजन'' विशेष उत्सवों एवं संस्कारों के अवसर पर आवश्यक माना जाता है। वैष्णवी,ब्रह्माणी,कार्तिकेयी अथवा मयूरी, इन्द्राणी,

यमी,वाराही तथा ईशानी आदि प्रधान तथा नारसिंही,चामुण्डा,वारुणी,कालापी, कुरुकुल्या,नारायणी, कौमारी,पराजिता तथा अपराजिता का पूजा कुल देवियों के रूप में की जाती हैं।

इनकी संख्या ९ या षोडश मानी जाती है। इसी प्रकार मालिनी,कौमारी,विमला, अरुणा, मेदिनी, जयन्ती,सर्वेश्वरी तथा कौलेशी -इन अष्ट नायिकाओं की उपासना इस सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है।

व्यापकता,प्रभाव एवं सुगमता के कारण देवों की अपेक्षा शक्ति की उपासना लोकों में विशेष फलवती मानी गयी है। शक्तिमान् देव भी स्व-स्व शक्ति में संचलित तथा सामर्थ्ययुक्त होते हैं।

अङ्कुर में बीज,अग्नि में ज्वाला, तरलत्व में जल, आकाश में अवकाश,धृति,कीर्ति,बुद्धि,श्री,स्मृति,श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, ह्री, वाक् - सभी नारियाँ हैं तथा प्रकारान्तर से चराचर में सर्वत्र शक्ति व्याप्त है। उस शक्ति को जानकर उसकी उपासना से सर्वस्व प्राप्त

किया जा सकता है। ''मातृदेवो भवः'' के प्रथम संकेत,'न मातुः परं दैवतम्'' में मातृभक्ति तथा देवी के सर्वश्रेष्ठ देवता होने का निर्देश भी किया है। परमतत्त्व का पुँलिङ्ग,नपुंसकलिङ्ग के साथ ही स्त्रीलिङ्ग में भी निर्देश प्राप्त है यथा-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।[१]

[१] श्वेता.उपनि.४/५

आदिशक्ति अजा एक है। उसके लोहित,शुक्ल,कृष्णरूपों से ही विविध प्रकार की सृष्टि हुई थी। जो देवतामयी अदिति प्राणरूप से प्रकट होती है तथा जो बुद्धिरूप गुहा में प्रविष्ट होकर रहनेवाली और भूतों के साथ प्रकट हुई है,उसे देखों निश्चय ही यही वह तत्त्व है।

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत।।[१]

इसी महाशक्ति की उपासना ब्रह्मादि सभी देवता करते हैं।उसी को माया या परमेश्वरी कहा गया है-

परमात्मा शिवः प्रोक्ताः शिवा मायेति कथ्यते ।
पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी।।

शिव शक्ति से युक्त होकर ही सृजन-पालन-संहार में समर्थ होते हैं। यदि वह शक्ति विरहित हों तो स्पन्द भी नहीं कर सकते । इसलिए विष्णु,शिव तथा ब्रह्माभी उनकी स्तुति करते हैं। पुण्यात्मा ही कोई देवी को प्रणाम तथा उनकी स्तुति कर सकता है।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।[२]

---
१ कठो.२/१/७

२ सौन्दर्य लहरी श्लो.१

भगवान् नारायण ने नारद को बताया है कि गणेशजननी दुर्गा, राधा,लक्ष्मी,सरस्वती और सावित्री देवियाँ सृष्टि की पाँच प्रकृति हैं। यहीं देवियाँ दुष्टदलन तथा धर्मस्थापन के लिये अवतीर्ण होती हैं।देवी ने स्वयं कहा है-

**इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।**

**तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षणम् ।।**[१]

वस्तुतः एक देवी के ही लीलावशात् विभिन्न रूप है। कुछ मनीषियों की धारणा है कि ''तात्विक पाँच विवर्ग-प्राण,भूति ध्वनि,तेज और प्रमा ही कालान्तर में पौराणिक तान्त्रिक राधा,लक्ष्मी,सरस्वती,दुर्गा और सावित्रीके नाम से विख्यात हो गयी।

इसी प्रकार दिव्य 'पवित्र शक्ति' गङ्गा का एवं रक्षिका शक्ति तुलसी का स्थान पा गयी। शाक्तमत में यह भी माना जाता है कि देवी के दक्षिणाङ्गुष्ठ के नख से मत्स्यावतार,तर्जनी से कूर्मावतार,मध्यमा से वाराहावतार,अनामिका से नृसिंहावतार,कनिष्ठिका से वामनावार, वामकराङ्गुष्ठ से परशुराम,तर्जनी से राम,मध्यमा से कृष्ण,और अनामिका से बौद्धमत के प्रवर्तक बुद्ध ने अवतार लिया था एवं भविष्य में कल्किअवतार वाम कर की कनिष्ठिका से होगा।

इस प्रकार शङ्खासुर,हिरण्याक्ष,हिरण्यकश्यपु,रावण तथा कंस वध देवी की कृपा के ही परिणाम है। आत्मतत्त्व,विद्यातत्त्व,तथा शिवतत्त्व की प्राप्ति के लिए महाशक्ति की उपासना वैदिक,तान्त्रिक तथा मिश्र विधियों में से किसी एक के द्वारा गुरु-उपदेश से की जाती है। देवीभागवत को भगवती का स्वरूप ही माना गया है। उसमें तत्त्वनिरूपक स्तोत्रात्मक अनुष्ठान-पद्धति एवं कथानिरूपक सभी

---

१मा.पुराण ९१/५१

का पूर्ण सामञ्जस्य है। तन्त्रानुसारी एवं पौराणिक दोनों का इसपर सामान अधिकार है। शिवसाधनोपासी,लतासाधनोपासी तथा वामाचार भेद से देवी उपासना का प्रचार हो गया,वाममार्ग के भी पाँच प्रकार हो गये, यथा-

कौलिकोऽङ्गुष्ठतां प्राप्तो वामः स्यात्तर्जनीसमाः।

चीनक्रमो मध्यमः स्यात् सिद्धान्ती योऽवरो भवेत्।।

कनिष्ठः शाबरो मार्ग इति वामस्तु पञ्चधा।।

शाक्तमत की उपासना में बाह्य तथा आभ्यन्तर आचारों के पालनपर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रातः काल से सायंतक की विधियों का पूर्ण पालन षट्चक्रभेदन तथा कुण्डलिनी जागरण के अनन्तर ही शक्ति की उपासना फलवती होती है।इसीलिए इसे अत्यन्त रहस्यपूर्ण माना गया है।

अन्यास्तु सकला विद्याः प्रकटा गणिका इव।

इयं तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव।।

अन्य सभी विद्याएँ गणिका की भाँति प्रकट और सर्वसुलभ हैं;किन्तु यह शाम्भवी विद्या कुलवधू की भाँति गुप्त है। अधिकारी को इसकी दीक्षा दी जाती है। कौलिक ही इसके वास्तविक अधिकारी है। कुल की भी अनेक परिभाषाएँ हैं,किन्तु तथ्य इस प्रकार है-

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।

कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते।।

कौल में पञ्चमकारों का भी प्रयोग होता है-

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।

मकार पञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ।।

परन्तु इन पञ्चमकारों का तत्त्वार्थ ज्ञान वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न है। उसे भलिभाँति तन्त्र-ग्रन्थों तथा गुरुमुख से जान लेना ही उचित है। जैसे मद्य का अर्थ-ब्रह्मरन्ध्र-सहस्त्रदल में शिवशक्ति सामरस्य से निसृत होता हुआ अमृतरूप,जिसे योगीजन खेचरीमुद्रा से पान करते है। इसीप्रकार मांस आदि के भी अर्थ साधारण प्रचलित अर्थ से सर्वथा भिन्न है। सभी द्विज आदिशक्ति वेदमाता की उपासना करते हैं इसलिए शाक्त हैं।

सर्वेशाक्ता द्विजाः प्रोक्ताः न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्।।

ऐश्वर्य,पराक्रम तथा ज्ञान प्रदान करने के साथ ही महाशक्ति अपने भक्तों के बाहरी तथा भीतरी शत्रुओं का नाशकर उन्हें आपत्तियों से विमुक्तकर देती है। इसीलिए भारत में सर्वत्र देवी की उपासना की जाती है। इस देश के बाहर भी अनेक देशों में,भारतीय पद्धति से तो नहीं प्रकारान्तर तथा नामान्तरों से शक्ति उपासना प्रचलित है। मिश्र,फिनीशिया और यूनान में देवी की पूजा के प्रमाण मिलते हैं।

डॉ.भण्डारकर के मतानुसार शाक्त सम्प्रदाय का वर्णन अभितक अधूरा ही प्राप्त होता है। केवल यहीं नहीं अन्यत्र भी शाक्त मत का परिचय प्रायः परवर्ती काल में प्रदुर्भूत ग्रन्थों के आधार पर ही किया गया लगता है।[१]

[१] वैष्णव,शैव तथा अन्य धार्मिक मत.पृ.१६६-६७

शिवदृष्टिकार सोमानन्द ने तृतीय आह्निक के प्रारम्भ में शक्तिपारम्य पक्ष का निराकरण किया हैं इस ग्रन्थ की पदसंगति नाम की वृत्ति में भट्ट उत्पल ने भट्ट प्रद्युम्न के तत्त्वगर्भ स्तोत्र का यह वचन उद्धृत किया है -

यस्या निरुपाधिज्योतिरूपायाः शिवसंज्ञया।
व्यपदेशः परां तां त्वामम्बां नित्युपास्महे।[१]

क्रम मत में वर्णित इस शाक्त अद्वयदृष्टि का विवेचन अभिनवगुप्त विरचित तन्त्रालोक और जयरथ द्वारा रचित इस ग्रन्थ की विवेक व्याख्या में देखा जा सकता है। स्पन्दकारिका के आधारपर यह विकसित हुआ,ऐसा कहा जा सकता है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा दर्शन का विकास शैव और शाक्त मत के परस्पर समन्वित रूप से हुआ माना जायेगा। इसीलिए आगममीमांसा में हमने शाक्तागम के प्रसंग में ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी यत्किञ्चित् परिचय दिया है।

नित्याषोडशिकार्णव के अनुसार तन्त्रशास्त्र की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं का उल्लेख मिलता है। इसीप्रकार शक्तिसंगमतन्त्र के चतुर्थ खण्ड में देश,काल, आम्नाय, विद्या, दर्शन, आयतन और आगम नामक सात पर्यायों,तन्त्र, उपतन्त्र, संहिता, चूडामणि, अर्णव, डामर,यामल,सूक्त, कक्षपुटी, विमर्शिनी, कल्प,

कल्पलता,चिन्तामणि,उड्डालक,उड्डीश, अवतार,बोध, कल्पद्रुम, कामधेनु,सद्भाव, तत्त्व,क्रम, अमृत,तर्पण,दर्पण,सागर आदि प्रविभागों में विभक्त सहस्राधिक तन्त्रों की संक्षिप्त सूचना दी है।

---

[१] शिवदृष्टि की वृत्ति पृ.१६

## साम्प्रतिक उपयोगिता

ज्ञान नित्य, सार्वजनिक तथा अनादि होता है। इसके उद्भव तथा प्रसार के दो स्रोत होते हैं- (१) साक्षात् दृष्ट तथा (२) उपदिष्ट ध्यातव्य है कि दृष्ट तथा उपदिष्ट तारतम्य सम्बन्ध है क्योंकि दृष्ट (साक्षात्) उपदिष्ट होता है।

गृहीता उस ज्ञान को स्मृति में संजोकर रखता हैं और उसी को व्यवहार ज्ञान का स्वरूप प्राप्त होता है। इसी के आधार पर इनके दो भेद माने जाते हैं- श्रुति तथा स्मृति दोनों ही नित्य ज्ञान वेद तथा स्मृति के रूप में शास्त्रों द्वारा विख्यात होता हैं। दोनों में आधाराधेय सम्बन्ध है। पुराणों की गणना स्मृतियों में की जाती है।

आचार्य शङ्कर ने गीतादि स्मृति ऐसा प्रयोग किया है। तथा उसी रूप में इसका उल्लेख किया है- इसमें १८ स्मृतियाँ, १८ पुराण, १८ उपपुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत की गणना की जाती है।

इस भाँति **'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्र तु वै स्मृति** (मनु) के अनुसार धर्मशास्त्र का भी स्मृत ज्ञान में समावेश हो जाता है जो नैरन्तर्य का प्रतीक है। और नहीं सदाचार तथा व्यवहार रूप में ग्राह्य है। इसलिए वेद को समझने के लिए इनका ज्ञान प्राथम्येन होना आवश्यक है -इतिहासरूप महाभारत की उक्ति है-**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्** । (म.आदि.पर्व)उदाहरणार्थ ऋग्वेद में वृत्रासुर-इन्द्र के द्वन्द्व का उल्लेख है। वृत्रासुर का विवरण पुराणेतिहास से ही गृहीत किया जा सकता है। स्मृतियों में संगृहीत ज्ञान को प्रत्येक शुभ अवसरों

पर कर्म-काण्ड के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जिससे वे स्मृति पटल से लुप्त न हो पाएँ। फलतः पुराण का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है कि नैरन्तर्य बना रहे।

पुराणों की संख्या १८ मानी गयी है । इस १८ संख्या  पर ऋषियों का विशेषाग्रह देखने को मिलता है। इस पर विस्तृत रूप से विचार करना आवश्यक है।

इसे इस प्रकार से देखा जा सकता है-

(१)- वेद चार ,उपवेद चार , छः वेदाङ्ग , पुराण,न्याय,मीमांसा,और धर्मशास्त्र। पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।वेदास्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।

१८ विद्याएँ,१८ धर्मशास्त्र (स्मृतियाँ) १८ पुराण,१८ उपपुराण, १८ पर्व महाभारत,१८ अक्षौहिणी सेना, १८ दिन युद्ध,१८ अध्याय गीता श्रीमद्भागवत की श्लोक संख्या १८०००इस रहस्यमय संख्या के सिद्धान्त पर विचार करना आवश्यक है। निम्नांकित प्रकार से इसकी व्याख्या की जा सकती है-

मानव शरीर में काम करने वाले तत्त्व १८ हैं-५कर्मेन्द्रिय,५ज्ञानेन्द्रिय,५ प्राण,५मन,बुद्धि तथा अहंकार। इन्हीं १८ संसाधनों द्वारा आत्मा कार्य करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुण्य तथा पाप कर्मों के सम्पादन के  ये १८ तत्त्व हैं। इन्हीं के निवृत्ति के लिए भी १८ उपायों का होना आवश्यक है जो इन धर्मशास्त्रों से परिमार्जित हो जाता है। पुराणों में भूमण्डल को अट्ठारह द्वीपों में

विभक्त माना है। महाकवि कालिदास ने सहस्रार्जुन के सम्बन्ध में 'अष्टादशयूप निषात् यूप' का प्रयोग किया है,जिसका अभिप्राय सभी द्वीपों यज्ञ की स्थापना की गयी थी। महाकवि श्रीहर्ष ने भी नैषधीय चरित में नवद्वीपपृथग्जयश्रियाम्'। महाराज नल में अट्ठारह विद्याएँ वर्तमान थी।

उन सभी में नल निष्णात थे। अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि इतनी विद्याओं का प्रचार-प्रसार अट्ठारह द्वीपों में था किन्तु इससे अट्ठारह पुराणों का सम्बन्ध जोड़ना इतना उपयुक्त नही प्रतीत होता है।

उपयुक्त व्याख्याएँ महामहोपाध्याय की पुस्तक पुराण परिशीलन में विस्तृत रूप में वर्णित हैं।[१]

इस समस्या के सुलझाने में एक बात और संकेतित करना आवश्यक है कि महर्षि व्यास ने अपने ग्रन्थों के प्रणयन में एक मङ्गल श्लोक का बार-बार उल्लेख किया है-

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।**
**वन्दे सरस्वतीं देवीं ततो जयमुदीरितम्।।**

यदि जय की व्याख्या को १८ अङ्क की व्याख्या के रूप में देखें तो दोनों की संङ्गति भी लग जाती है और १८अङ्क का समाधान भी हो जाता है।१८के दोनों अङ्कों का योग ९होता है(१+८=९) नव पूर्ण संख्या है। यदि पूर्णता पर विचार करें तो यह ज्ञात होता है कि अपने प्रसार में इसका समन्वय सतत् वर्तमान रहता है तथा इसके (प्रसार ) ईकाई तथा दहाई की संख्याओं का योग फल

[१] पु.परिशीलन पृ.२३-२६

सदा ९ ही रहता है। यदि हम इसे सृष्टि का मूल तत्त्व माने तो यह संख्या सृष्टि कर्ता तथा सृष्टि पल्लवन की ओर संकेत करती है-

९-९-३६-९

१८-९-५४-९

२७-९-७२-९

३६-९-९०-९

४५-९-१०८-९

५४-९-१२६-९

६३-९-१४४-९

७२-९-१६२-९

८१-

यह क्रम इसी भाँति विस्तृत होता जायेगा और मूल तत्त्व ९ ही रहेगा। इस भाँति १८ सृष्टि तथा उसके प्रसंग का स्परूप माना जा सकता है। इस गणितीय विधान को एक दूसरे प्रकार से भी देखा जा सकता है-य अक्षर अपने वर्गका प्रथम अक्षर है और 'ज'अपने वर्ग का आठवां अक्षर।

अङ्कानां वामतो गतिः से यह (१८)होता है। यदि इसे अक्षर क्रम से देखें तो यह यज बनेगा जिसका अभिप्राय है यज्ञ जो सृष्टि का मूल (गीतो-सह यज्ञाप्रजासृष्ट्वा) यदि वर्ण का बोधक है जिसका प्रयोग महर्षि व्यास ने अपने सभी ग्रन्थों के मङ्गल श्लोक में प्रयुक्त किया है। इस भाँति १८ का जय तथा यज में प्रयोग मान लेने पर १८ अङ्क की मान्यता सृष्टि ,उसका उद्भव तथा

विकास सभी का दार्शनिक दृष्टि से समन्वित रूप बन जाता है जो सृष्टि के सभी तत्त्वों का द्योतक है। १८ की उपपत्ति का यह समाधान समुचित प्रतीत होता है।

अपनी आत्मा को ही देवता मानने वाले वचन बौद्ध एवं शाक्त तन्त्रों में मिलते हैं। अद्वयवज्र प्रकाश को देवतास्वरूप मानते हैं और प्रत्यभिज्ञा दर्शन में उसको प्रकाश-विमर्श स्वरूप माना गया है। प्रकाश शिवस्रूप और विमर्श शक्तिस्वरूप है और इनकी स्थिति अविनाभाव संबन्ध से है। सभी सत्वों की बुद्धमयता का प्रतिपादन तन्त्रों में हुआ है।[१]

पुराणों की असाधारण विशेषता यह है कि जहाँ वेदों ने नेति-नेति और 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'' कहकर जिस परमात्मा कों मन इन्द्रिय और बुद्धि का विषय बताकर सामने उपस्थित कर दिया है।

वेदों के 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' ने पुराणों में भक्तों के लिए आराध्य देव की प्रेममयी मूर्ति और केवल औदार्य सौन्दर्य माधुर्य निलय रूप में ही नहीं ,किन्तु दीनबन्धु, दीनानाथ, अनाथनाथ पतितपावन , अशरणशरण और करुणावरुणालय के रूप में अपने को प्रकाशित किया है।

पुराणों के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त होने पर भी एकही धर्म का अनुसरण करते हैं और अनेकों देवी देवताओं के उपासक होकर भी एक अद्वितीय ब्रह्म के ही उपासक हैं। प्रत्येक उपासक यह जानता है कि वैष्णव लोग विष्णु के विभिन्न नाम और रूप में जिसकी उपासना करते हैं,शैव समूह शिव के विभिन्न नामों में,और शाक्त उपासक काली,दुर्गा,एवं चण्डी आदि के रूपों में उसकी आराधना करते हैं।

---

[१] महार्थमंजरीकार महेश्वरानन्द(पृ३०)

विभिन्न पुराणों ने विभिन्ननाम रूप और लीलाओं का आश्रया लेकर एक ब्रह्म के ही विशिष्ट प्रकार के आविर्भावों की महिमा का कीर्तन करते हुए विभिन्न उपासक सम्प्रदाय के हृदय एवं मन को विशेष रूप से आकृष्ट किया है।

प्रधनतया पुराण के पांच लक्षणों को लेकर मानव जीवन के चरम लक्ष्य परमपुरुषार्थ धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष को प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर प्रभावपूर्ण शैली में ज्ञान विज्ञान का विस्तार किया गया है। पुराणों में जितनी सरलता से चतुर्वर्ग की सिद्धि का साधन प्राप्त होता है। उतना अन्यत्र नहीं । व्यास जी ने १८ पुराणों में सब धर्मों का सार परोपकार और जीव मात्र पर दया करना पुण्य और दूसरों को किसी प्रकार की पीडा देना महापाप बतलाया है। यह मनुष्यता का कितना बडा मौलिक आचरण है।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

नैतिक,सामाजिक,चारित्रक,धार्मिक,व्यावहारिक,आध्यात्मिक,आधिभौतिक,एवं आधिदैविक आदर्श राम के चरित्र में मिलता है,वह संसार की किसी सभ्यता में दिखाई नहीं पडता । रामराज्य के शासन का विवरण व्यास जी ने महाभारत में इस प्रकार दिया है-'न पुत्रमरणं केचिद्रामे राज्यं प्रशासति'

रामायण में भी महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार कहा है-

न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।।

पुराणों से ही अणु शक्ति का ज्ञान प्राप्त करके महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में चेष्टाहीन परमाणुओं के परस्पर सम्पर्क से सात पदार्थों की उत्पत्ति का

सिद्धान्त स्वीकार किया है। इस समय भौतिक पदार्थ के अनुसंधानकर्ताओं ने बडे परिश्रम से किसी प्रकार संहारक अणु शक्ति का पता लगा पाया है, परन्तु अभी प्रजनन और पालन अणुशक्ति का पता उनको नहीं है। वह विज्ञान संस्कृत साहित्य में पद-पद पर मिलता है।

इस पर ध्यान देकर सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा अनुसंधान कर प्रत्यक्षीकरण किया जाय तो इस समय भी संसार का महान उपकार हो सकता है। देखिए!सौन्दर्य लहरी में महाशक्ति से अणु की उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार बांधा गया है।

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं,
विरञ्चिः संचिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपिसहस्रेण शिरसा
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्।।[१]

इस पद्य में बताया गया है कि आकाशरूपिणि अव्यक्त महाशक्ति से अणुओं की की वृष्टि हुई जिसमें से सर्जनात्मक अणुओं को संचित करके ब्रह्माजी संसार की सृष्टि करते हैं,पालनात्मक अणुओं को एकत्र करके भगवान् विष्णु संसार का पालन करते है और संहारात्मक अणुओं का संग्रह करके शंकर जी संसार का संहार करने में समर्थ होते है।

इस प्रकार ब्राह्मी,वैष्णी,और रौद्री अणुशक्ति ये तीन प्रकार के परमाणु बताये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपरीक्षण समिति उपलब्ध आधुनिक संसाधनों के द्वारा इनके अन्वेषण का प्रयत्न करे तो सम्भव है कि इस समय भी हम पुराण काल के समान वैज्ञानिक महत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

---

[१] सौ.ल.श्लो.२

पुराणों में सभी आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के सिद्धान्तों का सूत्ररूप में वर्णन मिलता है। सांख्ययोग एवं वेदान्त दर्शन का तो पुराणों में विशेषरूप से वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त व्याकरण, साहित्य,छन्द, ज्योतिष,निरुक्त, शिक्षा,कल्प,आयुर्वेद, गन्धर्ववेद, स्थापत्यवेद, राजनीति,समाजनीति,धर्म के विविध अङ्ग आदि विषयों का पुराणों में पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसलिए पुराणों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विश्वकोष कहा जाता है।

भारत में देवी पूजा का इतिहास बहुत प्राचीन है। वैदिक संहिताओं से लेकर सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में भी इसके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। परन्तु एक ब्रह्मस्वरूपा देवी का विकास, जिससे सभी देवियाँ प्रादूर्भुत होती हैं परवर्ती काल की देन है। देवी सम्बन्धी पुराण और उपपुराण भी अर्वाचीन ही माने जाते हैं। प्राचीन महापुराणों में यद्यपि देवी के माहात्म्य, व्रत एवं उत्सव आदि के सम्बन्ध में सामग्री तो प्राप्त होती है परन्तु स्वतन्त्ररूप से ये कृतियाँ शाक्त मत का प्रतिपादन नहीं करती हैं। परवर्ती काल में ही देवी पुराण, कालिका पुराण, महाभागवत एवं देवीभागवत आदि उपपुराण लिखे गये जिनमें मुख्य रूप से देवी स्वरूपों का वर्णन, महोत्सव, पीठ, व्रत, आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है। इन ग्रन्थों में किसी एक देवी को मुख्य मानकर शेष रूपों का अवतार रूप में वर्णन किया गया है। ये पुराण शाक्त मत एवं उसके प्रचार प्रसार का विस्तार से वर्णन करते हैं।

उपपुराणों के प्रतिपाद्य का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। भारतवर्ष के आध्यात्मिक, धार्मिक,सांस्कृतिक,ऐतिहासिक परिवेश का एक विराट चित्र उपपुराणों में अंकित हुआ है। अवतार-वर्णन,सूर्योपासना-सूर्य-महिमा, भक्ति-साधना, शिव-भक्ति,

विष्णु की आराधना, गणेश-माहात्म्य, तीर्थ-महिमा नदियों के प्रति पवित्रता-दिव्यता की भावना, तुलसी-महिमा, गो-गरिमा, गंगा की पतित-पावनी शक्ति, पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, पतिव्रत धर्म, दान-धर्म की महिमा, सदाचार, शुचिता, प्रायश्चित, वर्णाश्रम-व्यवस्था, व्रत-उपवास, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, पूजा-पाठ, भक्ति-भावना, ज्ञान-साधना, योग-मार्ग आदि भारतीय तत्त्वचिन्तन के विभिन्न पक्षों का, अनेकानेक विषयों का बहुत ही रोचक शैली में, उपख्यानों-आख्यानों के माध्यम से प्रभावशाली रूप में वर्णन हुआ है।

धार्मिकता-नैतिकता के प्रचार-प्रसार के महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए उपपुराणों में अनेक वृतान्तों-कथाओं की योजना की गयी है। जिन विषयों का उपपुराणों में प्रतिपादन किया गया है, उन्हें व्यवहार में लाने से व्यक्ति की भावनाएँ पवित्र होती है उसके विचारों में श्रेष्ठता-उदात्तता का संचार होता है, वह श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की ओर अग्रसर होता है। मनुष्य के द्वारा श्रेष्ठता की, उत्कर्ष की, आत्म-विकास की साधना ही संस्कृति कहलाती है। उपपुराण इसी सांस्कृतिक चेतना के संवाहक है।

आधुनिक सन्दर्भों में यदि उपपुराणों की उपादेयता पर विचार किया जाय तो हम यहाँ तीन उदाहरण देना चाहेंगे। आज सम्पूर्ण विश्व में प्रदूषण की, पर्यावरण के प्रदूषित होने की विकराल समस्या है। सभी देश अपने-अपने तरीके से इस चुनौती का सामना कर रहे है।

दूसरी ओर 'पर्यटन' को बढ़ावा देने के लिए,विश्व-स्तर पर अनेक योजनाएँ बनायी जा रही है, अधिकाधिक यात्रियों को, पर्यटकों को आकर्षित करने के

लिए बड़े-बड़े प्रयास हो रहे है, तीसरी ओर नदियों को प्रदूषण से बचाने के लिए अपारधन-राशि का व्यय किया जा रहा है। ये हमारे वर्तमान युग की, जीवन की 'अनिवार्यताएँ' हैं। इन सभी समस्याओं के समाधान उपपुराणों में विद्यमान है। इन ग्रन्थों में वृक्षों के आरोपण, संवर्धन, पोषण तथा पूजन का वर्णन हुआ है। वृक्षों की पूजा को 'रूढ़िवादिता' घोषित करने वाले 'तथाकथित' प्रगतिशील लोगों के सामने भी आज यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि वृक्ष हमारे जीवन के लिए कितने आवश्यक है। कितनी महत्ता है वनों की, तपोवनों की, अरण्यों की । इस प्रकार इन उपपुराणों में तीर्थो की महत्ता का वर्णन करते हुए, तीर्थ-स्थानों की पवित्रता, दिव्यता, ऐतिहासिकता, सांस्कृतिक महत्ता का उल्लेख करते हुए, तिर्थाटन को एक धार्मिक कृत्य बताकर, पुण्यार्जन का साधन कर हक, तीर्थ-यात्रा के लिए लोगों को प्रेरित किया जा रहा है।

हमारे देश में पर्यटन-व्यवसाय का यही प्राचीन रूप था। तीर्थ-यात्री अपनी आय का कुछ भाग धर्म-कार्य में, तीर्थों में जाकर दान-दक्षिणा, गो-सेवा, अन्न-दान, वस्त्र-दान आदि में व्यय करते थे। तीर्थ स्थानों,पुण्य-स्थलों के प्रति आस्था को जागृत करने में उपपुराणों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसीप्रकार धर्म-भावना की शिथिलता के कारण गङ्गा, यमुना, नर्मदा, कावेरी आज हमारे लिए सामान्य नदियाँ बन गयी है, इनके प्रति हमारी पूज्य-बुद्धि, श्रद्धा की भावना की लोप हो गया है। जिसका परिणाम भी हमारे सम्मुख है- आज नदियों में प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि बड़ी-बड़ी योजानाओं से भी कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकल पा रहा।

उपपुराणों में नदियों के साथ जो दिव्यता, पावनता, पाप-मोक्ष की भावना वर्णित है, इस भावना के पुनः उदय होने पर निश्चय ही नदियों को प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है। आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में उपपुराणों के महत्व के प्रतिपादन-सम्बन्धी इस संक्षिप्त-सी चर्चा का हमारा अभिप्राय यही है कि ये उपपुराण हमारे अतीत की धरोहर तो है ही, वे अपने युग की संस्कृति के प्रतिबिम्ब तो है ही, वर्तमान समय में भी इनकी महत्ता-उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस प्रारम्भिक चर्चा के अनन्तर उपपुराणों के प्रतिपाद्य, उनमें वर्णित विषयों का विवेचन किया जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आगामी पृष्ठों में जिन विषयों की चर्चा की गयी है, सभी उपपुराणों में वे सभी विषय वर्णित नहीं है। किसी उपपुराण में व्रत-उपवास, दान, धर्म की महिमा का वर्णन हुआ है तो किसी में तीर्थ-स्थानों, नदियों का माहात्म्य वर्णित है।

हम उपपुराणों के वर्ण्य-विषयों को यहाँ 'उपशीर्षकों' के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे है। इससे विषय की स्पष्टता, संक्षिप्तता के साथ-साथ आवृत्ति-पुनरावृत्ति के दोष का भी परिहार हो जायेगा। पिछले अध्याय में उपपुराणों के वर्गीकरण के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि पुराणों-उपपुराणों के रचना-काल तक भारतीय धर्म-साधना में पञ्चदेवोपासना का प्रचलन हो चुका था। सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति तथा गणेश की पूजा-उपासना इस काल-खण्ड में प्रचलित थी। इसी प्रसंग में इस विषय का उल्लेख किया गया है कि किस-किस उपपुराण में किस देवता-विशेष महिमा का, उसकी पूजा-अर्चना का वर्णन किया गया है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि देवता-विशेष के प्राधान्य के आधार पर ही यह वर्गीकरण आधारित है। विष्णु की पूजा या शिव की आराधना का मुख्य रूप से वर्णन होने के कारण वे वैष्णव या शैव उपपुराण माने जाते है।

इसी प्रकार सूर्य, शक्ति या गणेश को अधिक महत्व देने के कारण वे सौर, शाक्त या गाणपत्य उपपुराण कहलाते है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वैष्णव उपपुराणों में शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य की महिमा वर्णित नहीं है अथवा शैव उपपुराणों में शक्ति, सूर्य या गणेश के माहात्म्य का वर्णन नहीं हुआ। एक ही उपपुराण में इन पाँच देवताओं में से दो या तीन देवताओं के प्रति गहन भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव में पञ्चदेवोपासना पुराण-युग की एक मुख्य प्रवृत्ति थी । इसीलिए उपपुराणों में किसी एक देवता को प्रमुख मानते हुए भी, अन्य देवताओं की अवहेलना-उपेक्षा नहीं की गयी है। अपनी इस मान्यता की पुष्टि के लिए हम यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

'नरसिंह पुराण' एक वैष्णव उपपुराण के रूप में मान्य है। उपपुराणों में प्राचीनता एवं लोकप्रियता की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण वैष्णव उपपुराण है। विष्णु की महिमा एवं विष्णु के अवतारों की चर्चा के साथ-साथ इसमें भगवान् विष्णु की (नरसिंह रूप में) पूजा, उपासना का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। इसके साथ ही इसी उपपुराण में 'आदित्य' के १०८ नामों का उल्लेख भी हुआ है।[१]

---

[१] नरसिंह पुराण,अध्याय १९/३-१४

सूर्य के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति, नाम-जप के माध्यम से की गयी है। इसी उपपुराण के २६वें अध्याय में गणेश की महिमा का तो वर्णन हुआ ही है, गणपति की पूजा की शास्त्रीय विधि का भी उल्लेख किया गया है।

'सूर्य-स्तव' के रूप में हम यहाँ 'नरसिंह पुराण' से कुछ श्लोक उद्धृत कर रहे है-

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
तिमरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड आशुगः।।
एतैस्तु नामभिः सूर्य स्तुतस्तेन महात्मना।
उवाच विश्व कर्माणं प्रसन्नो भगवान् रविः।। [1]

अर्थात् अदिति के पुत्र, जगत् के उत्पादक, सम्पत्ति एवं प्रकाश के स्त्रष्टा, आकाश में विचरण करने वाले, सबका पोषण करने वाले, सहस्त्रों किरणों से युक्त, अन्धकार-नाशक,कल्याणकारी, विश्वकर्मा, मृत अण्डे से प्रकट तथा शीघ्रगामी-विश्वकर्मा ने उपयुक्त नामों द्वारा भगवान् सूर्य का स्तवन किया। इसमें भगवान् सूर्य को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह विश्वकर्मा से बोले।

नरसिंह पुराण में यह भी बताया गया है कि रावण के साथ राम के निर्णायक युद्ध में जाने के समय राम 'आदित्य हृदय मन्त्र' का उच्चारण करते है,जो सूर्य की महिमा का द्योतक है। यह मन्त्र श्रीराम को अगस्त्य ऋषि से प्राप्त हुआ था। [2]

इसी उपपुराण में गणपति की महिमा की सूचक स्तुति का वर्णन किया गया है। तपस्या आरम्भ करने से पूर्व इक्ष्वाकु कहते है :-

---

[1] नरसिंह पुराण,अ.१९/३-१५
[2] नरसिंह पुराण अ.५२/९८-९९

नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम्।
महागणपतिं शूरमजितं ज्ञान वर्धनम्।।
एकदन्तं द्विदन्तं च चतुर्दन्तं चतुर्भुजम्।।
ते नमामि गणाध्यक्षं भीममुग्रमुमासुतम्।।
मदमत्तं विरूपाक्षं भक्तं विघ्न निवारकम्।।[1]

मैं महान् देव गणेश जी को प्रणाम करके इस विघ्नराज का स्तवन करता हूँ जो महान् देवता एवं गणों के स्वामी है, शूरवीर तथा अपराजित है और ज्ञान-वृद्धि करने वाले है। जो एक, दो तथा चार दातों वाले है, जिनकी चार भुजाएँ है, उस भीमकाय और उग्र स्वभाव वाले पार्वती-पुत्र गणेश जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

'कल्कि उपपुराण' का कथन है कि भविष्य में होने वाले भगवान् -विष्णु के अवतार का वर्णन हुआ है। यह एक वैष्णव उपपुराण है, किन्तु इसका आरम्भ विघ्नेश-गणेश की वन्दना से प्रारम्भ हुआ है।

तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमयं सर्वज्ञसर्वाश्रयम्।
वन्दे वैदिक तान्त्रिकादि विधिः शास्त्रैः पुरोवन्दितम्।।[2]

'कपिल उपपुराण' भी एक वैष्णव उपपुराण है। इस पुराण के ६वें अध्याय में जाम्बवती-कृष्ण के पुत्र साम्ब के शरीर से कुष्ट रोग के समाप्ति के सस्न्दर्भ में भगवान् सूर्य की आराधना का वर्णन किया गया है-

शाम्बो द्वादशवर्षाणि सूर्यध्यानपरायणः।
पूजयंस्तु स्तुवन् गायन् सूर्यसूर्येति कीर्तयन् ।।

---

[1] नरसिंह पुराण अ.२५/५,६,९
[2] कल्कि पुराण अं.१/अ.१/१

दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तुते।

त्राहि मां करुणागार व्यंगं च पतितं भुवि।।

इति मन्त्रं स्तुवन्  गायन् शाम्ब कृष्णात्मजो द्विजाः।

पपात सहसा भूमौ पुनः पुनरुदीरयन्।।[1]

शाम्ब ने द्वादश वर्षों तक सूर्य का ध्यान करते हुए, उसकसी पूजा-स्तुति का गायन् किया। हे सूर्य! हे सूर्य! पुकारते रहे। वह बोले- हे दिवाकर! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, हे प्रभाकर! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे करुणा के आगार मेरी रक्षा करो- कहते-कहते वह भूमि पर गिर गये। हे द्विजो! इस प्रकार सूर्य-मन्त्र का जप करते-करते श्रीकृष्ण-सुत शाम्ब बार-बार सूर्य भगवान् की स्तुति करते हुए सहसा भूमि पर गिर पड़े।

अचेत-सी अवस्था में भूमि पर पड़े हुए शाम्ब के पास स्वयं भगवान् सूर्य ने आकर उसे उठाया और बोले-

यदा जाम्बवती सूनो! पापयुक्तिमपेक्षते।

एतानि माम् नामानि कीर्तयस्य निरन्तरः।।[2]

हे जाम्बवती के पुत्र-शाम्ब ! क्योंकि तुम पाप से मुक्ति चाहते हो, अतः ये मेरे २१ नाम है। इन नामों का जप करो। इसके पश्चात् इन २१ नामों की गणना की गयी है- भास्कर, सूर्य, चित्रभानु, विभावसु, यमतात् , अंशुमाली, मयुना, प्रीतिदायक, दिवाकर, जगन्नाथ, सर्वसाक्षी, विभाकर, लोक-चक्षु, स्वयम्भू, छाया को आनन्द देने वाले पति (प्रीतिदायक) तिमिरारि ग्रहधर, तीन-लोक प्रकाशक, भक्तबन्धु, दयासिन्धु, सर्वसाक्षी तथा परात्पर । इन नामों की गणना के अनन्तर

---

[1] कपिल पुराण अ.६/४२-४४

[2] कपिल पुराण अ.६/४७

भगवान् सूर्य शाम्ब को कहते है कि मेरी उदय की वेला में जो व्यक्ति इन नामों का जप करता है। मैं उसे शान्ति प्रदान करता हूँ।

**एकविंशति नामानि यः पठेदुदिते मयीं।**

**तस्य शान्तिं प्रयक्षामि सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।**[१]

'कपिल पुराण' के ही १६वें अध्याय में शिवाराधना में बाधा बनने वाले कामदेव को भस्म करने का प्रभावशाली वर्णन देखा जा सकता है। शिव और पार्वती दोनों के महत्व का प्रतिपादन 'कपिल उपपुराण' में हुआ है।[२]

इस पुराण का तो सन्देश ही यही है कि माधव (विष्णु-कृष्ण) तथा उमा माधव (शिव) में भेद-बुद्धि रखने से मनुष्य रौरव नरक-गामी होता है।[३]

**शंकरः नीलकण्ठश्च श्रीधरो नीलविग्रहः।**

**गौरीसो गोपिकाकान्तः ध्यायतामेक चेतसः।।**

**माधवस्योमाधवस्य किञ्चिद् भेदो न विद्यते।**

**मूढ़ा भेदं प्रकुर्वन्ति प्रपच्यते हि रौरवे।।**[४]

शङ्कर, नीलकण्ठ, श्रीधर, नील-विग्रह, गौरीश और गोपिका-कान्त का एकचित्त से ध्यान करो। माधव तथा उमा-माधव (हरि-हर) में कुछ भेद नहीं है किन्तु मूढ़ व्यक्ति इन में भेद करते है, अतः वे रौरव नरक में वास करते है।

---

[१] कपिल पु. अ. ६/५१

[२] कपिल पु..१६/२३,२४,२५

[३] कपिल पु. अ. १६/७

[४] कपिल पु.अ.२१/१५,१६,१७

'बृहन्नारदीय उपपुराण' भी वैष्णव उपपुराण के रूप में मान्य है। इसके ६वें अध्याय में वाराणसी (काशी) के शिवलिङ्ग की महिमा का वर्णन किया गया है।[१]

इसके ६वें अध्याय के श्लोक संख्या ३८,४८,३३वें अध्याय के श्लोक संख्या ७१ तथा ३४वें अध्याय के श्लोक-संख्या ५४-५५ में शिव-महिमा का प्रभावशाली रूप में वर्णन किया गया है।

इस संक्षिप्त-सी चर्चा के आधार पर, सहज ही यह निष्कर्ष सामने आता है कि पौराणिक युग में उक्त पाँचों देवताओं की महिमा जन-जन में मान्य थी। अपनी-अपनी रुचि, श्रद्धा, भावना, सम्प्रदाय-निष्ठा, परिवेश आदि के कारण किसी एक देव की विशेष रूप से उपासना-अर्चना करते हुए भी अन्य देवों के प्रति भी लोग श्रद्धा एवं सम्मान की भावना रखते थे। उनके भगवत्स्वरूप को पूण्यतया मान्यता देते थे। उपपुराणों का अनुशीलन इसी तथ्य का पोषण करता है।

अवतार वाद-भारतीय धर्म-साधाना के विकास-क्रम पर यदि दृष्टि डाले तो वैदिक काल में कर्म-काण्ड तथा यज्ञों की प्रधानता थी। उपनिषद्-काल में तत्त्व-चिन्तन की ओर पुराण-काल में भक्ति-भावना की प्रमुखता देखी जा सकती है।

पुराणों उपपुराणों का प्रधान विषय भक्ति-तत्त्व का प्रतिपादन है। भक्ति के आलम्बन-रूप में भगवान् की सगुण-साकार रूप में मान्यता परमावश्यक है। यही तत्त्व अवतार वाद का मूल बिन्दु है।

---

[१] बृ.ना.पु.अ.६/२८

पुराणों उपपुराणों में अवतार वाद का समर्थन, पोषण एवं प्रचार हुआ है। भगवान् अवतार क्यो लेते है- इस सम्बन्ध में भागवत पुराण' में कहा गया है-

**संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।**

**अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः।।[१]**

धर्म की स्थापना के लिए, धर्म के इतर-अधर्म को शान्त, नष्ट करने के लिए भगवान् जगदीश्वर अंश-रूप में अवरित हुए। 'गीता' के अत्यन्त प्रसिद्ध श्लोक में श्रीकृष्ण के वचनानुसार कहा गया है-

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।**

**धर्म-संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।[२]**

अवतार का दूसरा प्रयोजन यह माना गया है कि भक्तों को, साधको-आराधकों को साक्षात् भगवान् का सानिध्य प्राप्त होता है, उन्हें प्रभु के समीप होने का अवसर मिलता है। ईश्वर अपनी मानवीय लीलाओं के कारण भक्तों के आकर्षक-केन्द्र बन जाते है, जिससे भक्ति का विकास होता है।

भक्तों के जीवन में सरसता आ जाती है। भक्ति-ज्ञान का अत्यन्त सरस व्यावहारिक रूप ही तो है, जिसका आधार होती है- सगुण-साकार भगवान् की विभिन्न लीलाएँ। अतः भक्ति तत्त्व के प्रचार-प्रसार के लिए अवतार वाद की मान्यता का विकास हुआ है।

---

[१] भा.म.पु. १०/३३/२७

[२] गीता ४/८

पुराणों में तो भगवान् के अनेक अवतारों की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ ही है, उपपुराणों में भी इस विषय का वर्णन अनेक बार हुआ है। 'विष्णु-धर्मोत्तर' (प्रथम खण्ड) में भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों की चर्चा हुई है।[१]

यहाँ वाराह, वामन, त्रिविक्रम, नरसिंह, मत्स्य, कूर्म, हंस, नरवाराह, राम (भार्गव) राम (दशरथ-सुत) मान्धाता, पृथु, कार्तिवीर्यार्जुन आदि अवतारों का उल्लेख हुआ है।

'नरसिंह उपपुराण' में भगवान् विष्णु के दस अवतारों का वर्णन किया गया है। विष्णु के जिन अवतारों का यहाँ उल्लेखन किया गया है- मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलभद्र, कृष्ण तथा कल्कि। इनमें से नव अवतार जो अतीत में हो चुके है किन्तु कल्कि (१०वां) अवतार कलियुग में होगा यह बात भविष्यपुराण के कथन के रूप में कही गयी है। मार्कण्डेय जी का कथन है कि -

**कलिकालेन राजेन्द्र नष्टे धर्मे महीतले।**

**वृद्धिंगते पापे व्याधि समपीड़िते।।**

**सम्बलाख्ये महाग्रामे नानाजन-समाकुले।।**

**नाम्ना विष्णुयशः पुत्रः कल्की राजा भविष्यति।**

**अश्वमारुह्य खड्गेनम्लेच्छानुत्सादयिष्यति।।**[२]

'क्रियायोगसार उपपुराण' में भी विष्णु भगवान् के अवतारों का नाम-निर्देश हुआ है। यहाँ कृष्ण के नाम के स्थान पर बलराम का नाम उल्लिखित है। वस्तुतः

---

[१] वि.ध.पु.प्र.ख.अ.१९०

[२] मार्क.पुराण १५/२-३-४

'क्रियायोगसार' में कृष्ण को महाविष्णु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अतः महाविष्णु-रूप कृष्ण का विष्णु के अवतार के रूप में कैसे प्रस्तुत किया जाता है? अवतारों की इस सूची के बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का भी नाम दिया गया है-

नमो बुद्धाय शुद्धाय सकृपाय नमो नमः।
नमोऽस्तु कल्किने तुभ्यं नमस्ते बहुमूर्त्तये।।[1]

'आदिपुराण' में नारद बताते है कि श्रीकृष्ण भी विष्णु के अवतारों में से एक है, इस सम्बन्ध में नारद को सनत्कुमार ने सूचित किया था।

इस पुराण में श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। इस उपपुराण के १६वें अध्याय से प्रारम्भ कर ३०वें अध्याय तक अत्यन्त रोचक शैली में कृष्ण-चरित्र का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वसुदेव-देवकी की आठवीं सन्तान श्रीकृष्ण,साक्षात् भगवान् विष्णु का ही रूप है-

अष्टमे भगवान् विष्णुः सच्चिदानन्द विग्रहः।[2]

भक्ति-भावना : 'भक्ति' - पुराणों-उपपुराणों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य है। ईश्वर-प्राप्ति के अन्य साधनों-ज्ञान, योग, तपस्या आदि का वर्णन भी पुराणों-उपपुराणों में प्रचुर रूप में हुआ है किन्तु इनमें भक्ति की महिमा सबसे अधिक विस्तार से गायी गयी है।

---

[1] क्रियायोगसार ११/९

[2] आदि पु. अ.६/७

वस्तुतः पुराणों-उपपुराणों में भक्ति का अगाध एवं विशाल सागर उपड़ रहा है। किसी अलौकिक, दिव्य सत्ता के महत्व को स्वीकार करके, उसके प्रति श्रद्धा रखना-भक्ति है। श्रद्धेय के प्रति प्रेम-भावना की तीव्रता तथा सहज समर्पण भक्ति के अनिवार्य घटक है। श्रद्धा-भक्ति एक दूसरे के पूरक माने जा सकते है

'नारद भक्ति सूत्र' तथा 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' में भक्ति तत्त्व की चर्चा की गयी है। भक्ति तत्त्व के व्याख्याता कतिपय अन्य आचार्यों ने भी भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में चिन्तन किया है। ईश्वर के प्रति पराभाव के अनुराग को, भक्ति कहा गया है-

सा परानुरक्तीरश्वरे'।[१] अथवा सर्वेश के प्रति गहन श्रद्धा तथा प्रगाढ़ प्रेम को भक्ति कहते है।[२] लौकिक प्रेम का उदात्ती करण हो जाने से यह प्रेम जब ईश्वर-विषयक हो जाता है, दिव्य हो जाता है, तब वह भक्ति-भाव कहलाता है।

अवतारवाद की मान्यता के परिणाम-स्वरूप, ईश्वर के भिन्न-भिन्न अवतारों की पूजा-उपासना का प्रचलन हुआ। देवालयों का निर्माण किया गया। उन देव-मन्दिरों में भगवान् के किसी न किसी अवतार के विग्रह की, प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी। इन्हीं ईश्वरीय प्रतिमाओं में भगवान् की प्रतिष्ठा करके, उनकी पूजा-अर्चना के विधि-विधान को निश्चित किया गया।  अवतारवाद,मूर्ति-पूजा के कारण भक्ति-भावना का सम्पूर्ण विकास हुआ। भक्तजन,उपासक-गण,अपने प्रेम को, अपनी श्रद्धा-भावना को इन भगवत् -विग्रहों के सम्मुख अर्पित करने लगे। अपनी आस्था, विश्वास को प्रभु-चरणों में समर्पित करने लगे।

---

[१] शा.भ.सू.२

[२] भक्तिरसायन (मधुसूदन सरस्वती,अ.१)

पुराण-उपपुराण-काल में सगुण-साकार रूप में प्रतिष्ठित प्रभु की भक्ति का नव रूपों में विकास हुआ जिसे 'नवधा भक्ति' कहा गया है-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।[१]

भागवत् ' के समान ही 'शिव-पुराण' में भी कहा गया है-

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा।
दास्यं तथार्चनं देवि ! वन्दनं मम सर्वदा।।
सख्यमात्मर्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधा।।[२]

उपपुराणों में भक्ति-भाव का, नाम-जप, प्रभु-स्मरण, पूजा-अर्चना तथा आत्म-समर्पण का विस्तार से और प्रभावशाली रूप में वर्णन किया गया है। चाहे सूर्य की उपासना के रूप में हो या विष्णु की महिमा के रूप में ईश्वर के प्रति अनुराग की, अनुरक्ति की भावना अत्यन्त गहन रूप में व्यक्त हुई है। इसी प्रकार शिव-भक्तों, शाक्तों तथा गणेश जी के भक्तों ने भी अपने-अपने आरध्य, अपने उपास्य के प्रति गहरी श्रद्धा भावना को व्यक्त किया है। भगवान् विष्णु के दस या चौबीस अवतारों की पूजा-उपासना अर्चना, वन्दना का वर्णन उपपुराणों में विस्तार से वर्णित है।

'नरसिंह पुराण' में नरसिंह भगवान् की पूजा तथा विभिन्न प्रकार की सेवा का वर्णन किया गया है। भगवान् नरसिंह (विष्णु) के मन्दिर की स्वच्छता, प्रभु-

---

[१] भा.म.पु.७/५/२३

[२] शिवपुराण,रुद्रसंहिता,सतीखण्ड,२२-२३

प्रतिमा को जल, दुध, दधि तथा शहद से स्नान कराने, मन्त्र, जप, नैवेद्य चढ़ाने, गरुणध्वज फहराने, भजन-कीर्तन, नर्तन करने से भगवान् नरसिंह को प्रसन्न करने का वर्णन हुआ है। इसी सन्दर्भ में भगवान विष्णु की प्रतिमाओं के निर्माण, प्राणप्रतिष्ठा तथा विष्णु भगवान् की वैदिक एवं सामान्य विधि से पूजा-उपासना का वर्णन भी किया गया है।[१]

यहाँ अत्यन्त संक्षेप में इस विषय की चर्चा की जा रही है। सहस्रानीक के पूछने पर मार्कण्डेय ऋषि पहले तो उन्हें विष्णु-पूजा के पाँच आधार बताते है- अग्नि, सूर्य, हृदय, वेदी, और प्रतिमा। इसके पश्चात् वह बताते है कि शुक्लयजुर्वेद में जो पुरुष सूक्त है उस सूक्त के मन्त्रों से विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

पहली ऋचा से आवाहन, दूसरी ऋचा से आसन, तीसरे से पाद्य अर्पित करना चाहिए। चौथी ऋचा से अर्घ्य, पाँचवीं से आचमन, छठी से भगवान् विष्णु को स्नान कराना चाहिए। सातवी से भगवान् को वस्त्र अर्पित करनी चाहिए। आठवी से यज्ञोपवीत, नवमी ऋचा से गन्ध, दसवी ऋचा से भगवान् विष्णु को पुष्प चढ़ानी चाहिए। ग्यारहवी से धूप, बारहवी से दीप और तेरहवी ऋचा से नैवेद्य तथा फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजा-सामग्री भगवान् विष्णु को अर्पित करनी चाहिए। चौदहवी ऋचा से स्तुति करके,पन्द्रहवी से प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

[१] नरसिंह पुराण,अ.३२/३४

अन्त में सोलहवी ऋचा से विसर्जन किया जाता है। इस प्रकार विधि पूर्वक पूजा करने वाला भक्त शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।[१]

अन्त में महामुनि मार्कण्डेय कहते है कि हे राजन ! इस प्रकार मैने तुम्हें भगवान् विष्णु की पूजा की विधि बतायी है- अनेन नित्यं कुरुविष्णुपूजां प्राप्तुं तदिष्टं यदि वैष्णवपदम्।[२] यदि तुम्हें वैष्णवपद प्राप्त करने की इच्छा हो तो इस विधि के द्वारा सदा भगवान् विष्णु की पूजा करो।

'क्रियायोगसार' उपपुराण में भी चम्पक पुष्पों के साथ विष्णु की पूजा की विशेष प्रशंसा की गयी। विष्णु भगवान् के चरणोदक की भी बहुत प्रशंसा हुई है। फाल्गुन तथा चैत्र मास में विष्णु भगवान की पूजा की विधि तथा अन्यान्य सेवाओं का महत्त्व बताते हुए विष्णु-भक्त की महिमा बतायी गयी है। इस उपपुराण के २५-२७वें अध्यायों में राम-नाम के जप से प्राप्त होने वाले फल, 'ॐ रामाय नमः'।[३]

मन्त्र की महत्ता, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'।[४] मन्त्र का महत्त्व, श्रीकृष्ण के १०८ नामों के जप से प्राप्त पुण्य-लाभ, हरिभक्ति की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। राम के नाम उच्चारण के फल का वर्णन करते हुए 'क्रियायोगसार' उपपुराण में कहा गया है-

रामेत्यक्षरयुग्मं हि सर्व मन्त्राधिकं द्विज।
यदुच्चारणमात्रेण पापी याति परांगतिम्।।[५]

---

[१] नरसिंह पुराण अ. ६२/६३
[२] नरसिंह पु. अ.६२/२०
[३] क्रियायोगसार अ.१५/१७
[४] क्रियायोगसार अ.१६/४७
[५] क्रियायोगसार अ.१५/८८

अर्थात् 'र' और 'म' यह अक्षर युग्म सभी मन्त्रों से अधिक है। हे द्विज ! उसके (रामनाम के) उच्चारण मात्र से पापी व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। आत्म-समर्पण की भावना की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि कलियुग में शुद्ध मन से अपने सारे कर्म प्रभु को अर्पित करने से ही मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है- तदर्पये-महाविष्णौ भक्तिभाव समन्वितः।[१] आदिपुराण में भगवान् विष्णु के प्रति अगाध श्रद्धा-भावना की प्रशंसा की गयी है। श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार तो है ही, वे स्वयं ही भगवान् है- कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।[२]

यहाँ कृष्ण के साथ-साथ राधा की महिमा भी वर्णित है जो कृष्ण की पराशक्ति, आह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित है। 'आदि पुराण' के अनुसार प्रेम तथा भक्ति-भावना से परिपूर्ण हृदय से कृष्ण-कीर्तन ही कृष्ण की पूजा है जो योग, दान आदि सबसे उत्कृष्ट है। 'आदिपुराण' में विष्णु-भक्ति का अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

'कल्कि पुराण' के प्रथम अंश के सातवें अध्याय में पद्मावती के द्वारा विष्णु की उपासना-पद्धति का वर्णन करते हुए 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र के जप की महिमा बतायी गयी है।[३]

इस पुराण के दूसरे अंश के प्रथम तीन अध्यायों में भी विष्णु-भक्ति का महत्त्व वर्णित है। प्रथम अध्याय में पद्मावती तोते को भगवान् विष्णु की पूजा-अर्चना की विधि विस्तार से बताती है। वह कहती है-

एवं पदाति केशान्तैः ध्यात्वा तं जगदीश्वरम्।

---

[१] क्रियायोगसार अ.२६/४६-४७

[२] आदि,पु. अ.१३/१७

[३] कल्कि,पु. प्र.अं.अ.७

पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्र जपति मन्त्रवित्।।[1]

इस प्रकार चरणों से केश पर्यन्त भगवान् विष्णु का ध्यान करके मन्त्र के ज्ञाता को 'मूल मन्त्र' का जप करना चाहिए। तीसरे अध्याय में भगवान् कल्कि का जो वर्णन किया गया है, वह भी स्पष्ट रूप में विष्णु भगवान् के ही स्वरूप का वर्णन है।

'बृहन्नारदीय उपपुराण' में भी वृन्दावन-विहारी उपेन्द्र (श्रीकृष्ण) की महिमा का वर्णन तथा कृष्ण-भक्ति का माहात्म्य वर्णित है। यहाँ श्रीकृष्ण को 'आदि देव' कहा गया है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को इस आदि देव का अंश बताया गया है। यहाँ भगवान् को हरि, नारायण, वासुदेव, जनार्दन आदि नामों से पुकारा गया है।

कपिल पुराण' में शाम्ब द्वारा भगवान् सूर्य की पूजा-उपासना तथा उसकी भक्ति-भावना का वर्णन हुआ है। भगवान् भास्कर की अर्चना-वन्दना से शाम्ब के कुष्ठ-रोग से मुक्त होने की चर्चा पहले भी की जा चुकी है।[2]

राजा इन्द्रद्युम्न की भगवान् जगन्नाथ जी के प्रति श्रद्धा-भावना, कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा की प्रतिमाओं का निर्माण तथा स्वयं ब्रह्मा द्वारा उनकी स्थापना, इन्द्र की शङ्कर के प्रति भक्ति-भावना का भी वर्णन प्राप्त होता है।[3] वैष्णव के चिन्हों का वर्णन करते हुए कपिल मुनि को स्वयं महादेव कहते हैं कि जो

---

[1] कल्कि,पुराण २ अं.अ.१/३

[2] कपिल पु.अ.६

[3] कपिल पुराण,अ.४/१३-१८

व्यक्ति आनन्दाश्रुओं से समायुक्त हो, जिसके मुख से निरन्तर ऊँचे स्वर से गोविन्द का कीर्तन होता रहे- वही वैष्णव है-

आनन्दाश्रु समायुक्तमुच्यैर्गोविन्दकीर्तनम्।[१]

ये वैष्णव-चिन्ह भक्त के ही लक्षण होते है। इसी पुराण में कहा गया है-

हरेर्नाम हरेर्नाम कीर्तयस्य निरन्तरम्।[२]

'पराशरोपपुरण' के २५वें अध्याय में इन्द्र देव द्वारा शिवलिङ्ग की स्थापना, भगवान् शिव की भक्ति का वर्णन किया गया है। शिव पार्वती से कहते है कि जहाँ मेरा ज्ञानी-भक्त निवास करता है, मै भी वहाँ रहता हूँ।

यत्र साक्षाच्छिवो ज्ञानी वर्तते प्रीति संयुतः।
तत्राहं प्रीति संयुक्तः सदा सन्निहतः प्रिये।।[३]

'विष्णुधर्मोत्तरोपपुराण' में विष्णु की स्तुति, उस स्तुति-गायन् का पुण्य-लाभ का वर्णन ७२वे अध्याय मे गजेन्द्र-मोक्ष प्रसंग प्रस्तुत किया गया है जिसमें भगवान् विष्णु ग्राह से गज को मुक्त कराते है।

५८ श्लोकों में वर्णित भक्ति-भाव से परिपूर्ण यह प्रसंग बहुत ही रोचक है।[४] उपपुराणों में दक्षिण भारत में विकसित भक्ति-आन्दोलन का, उस आन्दोलन के सूत्रधार आचार्यों, व्याख्याता विद्वानों का तथा भक्ति-तत्त्व का भी गम्भीरता से प्रतिपादन किया गया है। इस सम्बन्ध में 'भार्गव उपपुराण' में विशेष रूप से

[१] कपिल पु.अ.२१/२३
[२] कपिल,पु.अ. २९/३०
[३] पाराशरोप.पु.अ.१५/८
[४] वि.ध.पु.अ.१९३-१९३

चर्चा की गयी है। वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति की आलवार-परम्परा अत्यन्त सम्मृद्ध रही है। इन आलवा भक्तों ने तमिल तथा संस्कत में भक्ति के प्रतिपादक ग्रन्थों की रचना की है। कहीं-कहीं आलवा के स्थान पर 'अडियार' शब्द का भी उल्लेख हुआ है किन्तु दोनों का अर्थ एक ही है- वैष्णव भक्त। आलवार भक्तों की संख्या १२ है। इनके नामों की सूची इस प्रकार है जो भार्गव उपपुराण की भूमिका में कहा गया है।[१]

| संस्कृत नाम | तमिल नाम |
|---|---|
| १-सरोयोगी | पोयगै आलवार |
| २- भूतयोगी | भूतत्तालवार |
| ३-महदाह्वय योगी | ८प्रेयात्लवार |
| ४-भक्तिसार | तिरूमलि सई आलवार |
| ५- शठकोप योगी | नम्मालवार |
| ६-मधुर कवि योगी | मधुर कवि आलवार |
| ७- कुलशेखर योगी | कुलशेखर आलवार |
| ८- मनुवाहन योगी | तिरुप्पाण आलवार |
| ९-भक्ताङिघ्र रेणु योगी | तोंडरडीपोडी आलवार |
| १०- विष्णुचित्त योगी | पेरियालवार |
| ११- गोदाम्बा | अण्डाल |
| १२- परकाल योगी | तिरुमंगै आलवार |

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि भक्ति-भावना का वर्णन उपपुराणों का प्रमुख प्रतिपाद्य है। अनेक आख्यानों-उपाख्यानों, वृत्तान्तों के माध्यम से भक्ति-भावना की महिमा इनमें प्रतिपादित की गयी है।

[१] भार्ग.उ.पु.भू.पृ.२६

भक्ति के उमड़ते हुए प्रवाह को इन उपपुराणों में वाणी दी गयी है। इतना ही नहीं दक्षिण भारत में प्रवहमाण भक्ति-धारा का भी इन उपपुराणों में वर्णन किया गया है जो उत्तर और दक्षिण की एकता को रेखांकित करता है। भक्ति-तत्त्व की दृष्टि से उत्तर और दक्षिण में कोई अन्तर नहीं है। भावात्मक रूप से सम्पूर्ण भारत एक है।

धर्म एवं सदाचरण :- व्यक्ति के नैतिक उत्त्थान, सामाजिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा तथा जीवन के स्वस्थ संचालन के लिए धर्म और सदाचरण परमावश्यक है। 'ब्रह्मपुराण' में कहा गया है- **न ह्याचार विहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा।**[१] अर्थात् आचरण-हीन मनुष्य का कल्याण न तो यहाख् (लोक में ) होता है न ही परलोक में। सदाचार क्या है,उसे स्पष्ट करते हुए 'विष्णु पुपराण' में कहा गया है-

**साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधु वाचकः।**
**तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्य उच्यते।।**[२]

'सत' शब्द का अर्थ है- साधु (श्रेष्ठ-सज्जन) और साधु वही है जो दोष-रहित हो। उस साधु पुरुष का जो आचरण होता है, जो व्यवहार होता है उसे ही 'सदाचार' कहते है।

पुराणों में वर्णाश्रम-व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है। 'उपपुराण' भी इस विषय में पुराणों के ही अनुगामी है। वर्णों के अन्तर्गत ब्राह्मणों, क्षत्रियों ,वैश्यों

---

[१]ब्रह्मपु.अ.२२१/६
[२] विष्णु पु.३/११/३

और शूद्रों के क्या-क्या कर्तव्य है, क्या-क्या सामाजिक दायित्व है- इनका विस्तार से वर्णन उपपुराणों में किया गया है। इन्हें ही इन वर्णों के 'धर्म' कहा गया है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम,गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ तथा सन्यासाश्रम में मनुष्य के क्या-क्या कार्य है, उनके लिए क्या करणीय हैं और क्या अकरणीय हैं, इस विषय की चर्चा उपपुराणों में की गयी है। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के धर्मों-कर्तव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी कर्तव्य होते हैं, कुछ और भी दायित्व होते हैं जो सभी वर्णों-आश्रमों के लोगों के लिए पालनीय होते हैं। उन्हें मानव-मात्र का धर्म कहा जा सकता है। यह मानव-धर्म ही सदाचार है। पुराणों-उपपुराणों में सदाचरण का वर्णन दैनिक कर्तव्यों के रूप में, आह्निक कार्यकलाप के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रातः,ब्रह्म-मुहूर्त में उठने-जागने से लेकर रात्रि-शयन पर्यन की आचरण-संहिता का वर्णन उपपुराणों में हुआ है।

'नरसिंह पुराण'- के चार अध्यायों में सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों के धर्मों-कर्तव्यों का वर्णन विस्तार से किया गया है।[१]

सदाचार के महत्व का प्रतिपादन करते हुए 'बृहन्नारदीय पुराण' में कहा गया है कि वेद, वेदाङ्गों का ज्ञाता होते हुए भी जो आचार से भ्रष्ट हो जाता है, उसे 'पतित' कहते हैं। पवित्र तीर्थ-स्थनों की यात्रा करने या पावन स्थलों पर निवास करने वाला व्यक्ति भी यदि आचार-हीन है तो वह साधु व्यक्ति नहीं कहा जा सकता।

---

[१] न.उ.पु.अ.५७-६०

आचरण से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है, आचरण से ही प्रसन्नता प्राप्त होती है, आचरण से ही चरम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा कौन-सा पदार्थ है जो सदाचार से प्राप्त नहीं होसता। धर्म और अर्थ भी तब तक मनुष्य को प्रसन्नता नहीं देते जब तक कि वह सदाचार का पालन नहीं करते।[१]

'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में भी सदाचार के पालन का महत्त्व कई श्लोकों में वर्णित हैं। सदाचार के अन्तर्गत कई प्रकार के मानवीय कत्तव्यों का उल्लेख ४७वें अध्याय में किया गया है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुरण' के अध्याय २२०-२४१ में हंसगीता के अन्तर्गत धर्म और सदाचार का वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु हंसावतार के रूप में धर्मोपदेश करते हैं। यह वर्णन अत्यन्त विस्तृत है तथा प्रायः 'मनुस्मृति', 'याज्ञवल्क्य स्मृति' तथा 'पाराशर स्मृति' पर आधारित है।

हंस-गीता के रूप में जिस धर्म-सदाचार का प्रतिपादन किया गया है, उसे किसी जाति या सम्प्रदाय और किसी देश-विदेश से सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः यहाँ मानवीय गुणों की ही चर्चा की गयी है, जिन्हें 'मानव-धर्म' कहा जा सकता है। पाप-कर्मों का फल दुःख, कामान्धता की निन्दा, मानदोष, लोभदोष, क्रोधदोष, अहंकार-दोष, शुचिता, असत्य-वादन-दोष, हिंसादोष, धर्म-प्रशंसा, स्वाध्याय-प्रशंसा, कीर्ति-प्रशंसा, शील-प्रशंसा, जितेन्द्रियता, सत्य-प्रशंसा, तप-प्रशंसा, शौर्य-प्रशंसा, क्षमा-महिमा, कृतज्ञता, श्रद्धा-प्रशंसा, संकल्प-प्रशंसा, दया-महिमा, प्रिय-भाषण-प्रशंसा- जैसे मानवीय गुणों-दोषों का वर्णन अनेक अध्यायों में किया गया है।

---

[१] बृ.ना.पु.अ.४/२०-२७

उपपुराणों में धर्म तथा सदाचार का इतना विस्तृत वर्णन यह सूचित करता है कि उपपुराणों के रचयिता मानव-धर्म के प्रबल पोषक थे। वे यहीं सन्देश देते है कि मानवीय गुणों के प्रचार और दोषों के परिहास से ही व्यक्ति का, समाज का, किसी जाति विशेष का ही नहीं, सम्पूर्ण मानवता का मंगल हो सकता है।

निष्कर्ष यह है कि सभी वर्णों-आश्रमों के लोग अपने-अपने धर्मों-कत्तव्यों का पालन करें, सभी जन मानव-धर्म तथा सदाचार का पालन करें। यह उपपुराणों का सन्देश है। धर्म-सदाचार का पालन करने से मनुष्य का स्वकीय आत्मोत्त्थान तो होगा ही सम्पूर्ण समाज का भी इससे मंगल होगा, कल्याण होगा। मानव-मंगल का विधान ही तो उपपुराणों का मुख्य लक्ष्य है।

व्रत-वर्णनरू- भारतीय धर्म-साधना में व्रतों का बहुत मत्त्वपूर्ण स्थाान है। साधकों-भक्तों को यह विश्वास होता है कि देवों ने, ऋषि-मुनियों के जीवन-यापन के विषय में कुछ नियम निश्चित किये हैं, जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। संकल्पपूर्वक किसी नियम का पालन करना ही व्रत कहलाता है। मनसः संकल्पो व्रतमुच्यते।[१]

शास्त्रों में वर्णित नियमों का दृढ़ निश्चय से पालन करना व्रत होता है। पुराणों - उपपपुराणों में व्रतों का वर्णन विस्तार से किया गया है। व्रतों के अनुष्ठान से मनुष्य का मंगल होता है, आत्म-कल्याण एवं आत्मोत्त्थान की ओर मनुष्य अग्रसर होता है।

---

[१] कपिल,उ.पु.प्रस्ता.भा. से उद्धृत

मानव-मन में उदात्त भावनाओं एवं शुद्ध-पवित्र विचारों का उदय होता है। उपपुराणों में अनेकत्र व्रतों का माहात्म्य वर्णित है, व्रतों के अनुष्ठान करने वाले व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले पुण्यों का उल्लेख किया गया है। कपिल उपपुराण' में कहा गया है कि मुनियों के द्वारा प्रश्न करने पर भरद्वाज उन्हें 'चतुर्मास व्रत' का महत्त्व बताते हैं। वह कहते हैं- जो मनुष्य एकाम्रक वन में 'चतुर्मास व्रत' करता है, वह काशीवास का शतगुना या सहास्राधिक फल पाता है।

केदार और पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो फल मिलता है, उससे शतगुना फल स्वर्णकूटाचल में प्राप्त होता है। कुरुक्षेत्र में चन्द्र-ग्रहण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल एकाम्रक वन में चतुर्मास व्रत से प्राप्त होता है। गोदावरी-गङ्गा में तपस्या करने से जो फल मिलता है, वही एकाम्रक के चतुर्मास से होता है।[१]

स्पष्ट ही एकाम्रक वन (तीर्थ) के साथ-साथ चतुर्मास व्रत का महात्त्व भी बताया गया है। इसके पश्चात् चतुर्मास व्रत की शास्त्रीय विधि का, व्रत के अनुष्ठान के नियमों का विस्तृत रूप में उल्लेख करके अन्त में कहा गया है कि चतुर्मास का व्रत करने वाला व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करता है- धमार्थ काम मोक्षार्थ समाप्नोति न संशयः।[२] इसी सन्दर्भ में कहा गया है-

चतुर्मास्य व्रतं विप्र ! य एवं कुरूते पुमान्।
नारीवाथ द्विजश्रेष्ठा स फलं लभते ध्रुवम्।।[३]

---

[१] कपि.उ.पु.अ.१८/२८-२९
[२] कपि.उ.पु.अ.१८/९०
[३] कपि.उ.पु.अ.१८/८८

इसी प्रकार 'क्रियायोगसार' नामक उपपुराण में एकादशी के व्रत का माहात्म्य वर्णित है। इस सन्दर्भ में यह बताया गया है कि विष्णु भगवान् द्वारा एकादशी का निर्माण करके पापीयों के उद्धार की व्यवस्था की गयी है और सभी व्रतों की तुलना में एकादशी-व्रत को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। एकादशी-व्रत के विधि-विधान का, इसमें पालन किये जाने वाले नियमों की चर्चा के उपरान्त एकादशी-महिमा सम्बन्धी कतिपय आख्यान भी प्रस्तुत किये गये है। 'क्रियायोगसार' उपपुराण के १२-१३वें अध्यायों में एकादशी माहात्म्य का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली रूप में किया गया है। यहाँ इस विषय में हम केवल एक ही श्लोक उद्धृत कर रहे हैं। व्यास जी कहते हैं-

**एकादश्याः फलं सर्ववक्तुं नारायणदृते।**
**शक्नोति नान्यो विप्रषे तस्माद्वच्मि समासतः।।**[१]

'विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण' के तृतीय खण्ड में अनेकानेक व्रतों की चर्चा अत्यन्त विस्तार रूप से की गयी है। व्रतों में पालनीय नियमों की, विधि-निषेधो का भी उल्लेख किया गया है। इनमें कुछ व्रतों के नाम इस प्रकार हैं- त्रिमूर्ति व्रत, पौरुषी प्रतिपदा, प्रकृति-पुरुष व्रत, बालेन्दु द्वितीया व्रत, अशून्यशयन द्वितीया व्रत, त्रिविक्रम तृतीया व्रत, विष्णु त्रिमूर्ति व्रत, विष्णु चतुर्मूर्ति व्रत, पञ्चमूर्ति व्रत (चार भेद), सप्तमूर्ति व्रत, पाताल व्रत, सप्तद्वीप व्रत, सप्तसमुद्र व्रत, सप्तलोक व्रत, सप्तनदी व्रत, विश्वदेव व्रत, रुद्रव्रत, द्वादश आदित्य व्रत, कामदेव व्रत, धन व्रत, वायु व्रत, विरूपाक्ष व्रत, यम व्रत, माहेश्वर व्रत, पितृ व्रत, चन्द्र व्रत, पौर्णमासी व्रत, वरुण व्रत- इत्यादि।[२]

---

[१] क्रिया.सार,अ.२२/६

[२] विष्णु ध.पु.ख.३,अ.१२६-२२५

पुलस्त्य-दालभ्य संवाद के रूप में इन व्रतों के अनुष्ठान की शास्त्रीय विधि की चर्चा की गयी है और यह भी बताया गया है कि इन व्रतों के पालन करते समय जिन देवताओं की पूजा-उपासना की जाती है, वे सब विष्णु के ही भिन्न-भिन्न रूप है।[१]

'विष्णुधर्मोत्तर' में द्वादशी व्रत की महिमा का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। राज्यप्रद द्वादशी व्रत,काम द्वादशी व्रत, शुक्ल पक्ष द्वादशी, श्रावण द्वादशी व्रत में विष्णु की पूजा-उपासना का विधान किया गया है। श्रावण द्वादशी व्रत का माहात्म्य बताते हुए एक अत्यन्त रोचक आख्यान भी प्रस्तुत किया गया है। (अध्याय १५७-१६४) इसी प्रकार तिल द्वादशी व्रत की महिमा एवं विधि आदि का वर्णन दो अध्यायों में किया गया है।[२]

'बृहन्नारदीय पुराण' में शुक्ल द्वादशी पूर्णिमा, ध्वजारोहण व्रत तथा हरिपञ्चक व्रतों का उल्लेख करते हुए इन व्रतों के पालन की विधि का भी वर्णन किया है।[३]

इसी प्रकार अन्य कई उपपुराणों में भी वतों की महिमा का वर्णन किया गया है। व्रत-वर्णन-प्रसंग का उपसंहार करते हुए यह कहा जा सकता है कि व्रत के अनुष्ठान के रूप में किया गया उपवास, पुण्य-सलिला नदियों में स्नान, सुयोग्य, सुपात्र ब्राह्मणों को दिया गया दान,श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग, सन्तों-माहात्माओं के साथ अध्यात्म-चर्चा इन सबसे मानव-मन में श्रेष्ठ भावनाओं का, मानव-मस्तिष्क में श्रेष्ठ विचारों का जन्म होता है। इस दृष्टि से ये उपपुराण मानव को श्रेष्ठ मानव बनाने में, वातावरण को धर्म-मय, अध्यात्म-प्रधान बनाने

---

[१] वि.ध.पु.ख.३अ.२१५-२२०

[२] वि.ध.पु.ख.३,अ.१६३-१६४

[३] बृ.ना.पु.अ.१६-१७

में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। व्रतों के पालन से मानव सहज और सरल जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सकता है- यहीं उपपुराणों का सन्देश है।

तीर्थ-महिमा :- भगवदवतारों की कर्म-भूमि, क्रिड़ा-स्थली, ऋषियों-मुनियों, तपस्वियों की साधना-भूमि,पावन नदियों के संगम-स्थल, पूजा-उपासना के केन्द्र, महापुरुषों, देवी-देवताओं के दिव्य कार्य-स्थलों के स्मारक, तीर्थ-स्थान कहलाते हैं। पुराणों-उपपुराणों में बहुत ही रोचक शैली में, मार्मिक आख्यानों के द्वारा जन-साधारण के हृदय में तीर्थों की महिमा को प्रतिष्ठित किया गया है। उपपुराणों में तीर्थाटन, पुण्य-सलिला नदियों में स्नान, तीर्थों में जाकर पुण्यार्जन करने की प्रेरणा विशेष रूप से दी गयी है। उपपुराणों के अनुशीलन से तो ऐसा ज्ञात होता है कि इस देश की भूमि का एक-एक नगर, एक-एक गाँव तीर्थ है, परम पवित्र स्थान है। यहाँ  का कण-कण तीर्थमय है।

'पाराशरोपपुराण' में देवी पार्वती के पूछने पर स्वयं भगवान् शिव वाराणसी की महिमा बताते हैं-

शृणु गुह्यतमं देवि मया नोक्तमितः पुरा।
संसार विष-वृक्षस्य कुठारमिदमुत्तमम्।।
अविमुक्तमिति ख्यातं क्षेत्रमस्ति ममालयम्।
संसार विष दंष्टानामगतीनां महौषधम्।[1]

कुरुक्षेत्रं प्रसिद्धं यद् भूम्या पापनिवर्तकम्।
तदाश्रयफलं चापि लभतेऽस्यैव सेवया।।[2]

---

[1] पारा.पु.अ.१५/४-५
[2] पारा.पु.अ.१५/११

अत्र भागीरथी तोये सकृत स्नात्वा तु मानवः।

दृष्ट्वा विश्वेश्वराख्यं मां करुणार्णवमम्बिके।।[1]

भगवान् शङ्कर कहते हैं कि मैंने इससे पूर्व, इस नगरी की महिमा का रहस्य किसी को नहीं बताया। हे पार्वती ! सुनो यह संसार एक विष-वृक्ष है और यह पुण्य नगरी इस वृक्ष को काटने का कुठार है। अविमुक्त क्षेत्र के रूप में विख्यात यह क्षेत्र मेरा निवास स्थाान है। संसार के विष-दंश से काटे गये गतिहीन लोगों के लिए यह नगरी एक महौषधि के समान है।

इस भूमि पर पापनाशक शक्ति के रूप में विख्यात जो कुरुक्षेत्र है, वहाँ निवास काने से जो फल प्राप्त होता है, वह पुण्य-लाभ काशीवास से ही होता है। हे अम्बिके ! यहाँ गङ्गा-जल में एक बार स्नान करने तथा विश्वनाथ जी के दर्शन करने से मनुष्य्य मुझ करुणा के सागर को प्राप्त करता है।

'क्रियायोगसार उपपुराण' में गङ्गा-सागर-संगम तीर्थ का माहात्म्य अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी उपपुराण में हरिद्वार, प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र की दिव्यता, पावनता, का भी वर्णन हुआ है। जैमिनी के पूछने पर भगवान् वेदव्यास प्रयाग के सम्बन्ध में कहते हैं- प्रयागस्य फलं वत्स गङ्गाब्धि संगमस्य च।

सम्यक ् वक्तुं न शक्नोमि संक्षेपाच्छ्रूयतां द्विज।।

कोटि ब्रह्माण्ड मध्येषु यानि तीर्थानि वै मुने।

प्रयान्ति तानि सर्वाणि प्रयाग प्रतिमां तु किम्।

गङ्गाया यमुनायाश्च सरस्वत्याश्च संगमे।

---

[1] पारा.पु.अ.१५/१२

**प्रशंसन्ति सुराः सर्वे ब्रह्म विष्णु शिवादयः।।**[१]

इसी सन्दर्भ में आगे व्यास जी कहते हैं कि करोड़ों गौओं के दान से, हजारों अश्वमेध यज्ञों से, मेरु पर्वत जितने स्वर्णदान से जो फल प्राप्त होता है, वह फल प्रयागराज के संगम-स्नान से प्राप्त होता है।

**'विष्णुधर्मोत्तरपुराण'** में श्रीकृष्ण की पूजा-आराधना के लिए पवित्र तीर्थों का निर्देश करते हुए इन पुण्य-स्थानों का माहात्म्य बताया गया है- पुष्कर, गया, चित्रकूट, प्रभास, वृन्दावन, जयन्ती, हस्तिनापुर, कर्दमाला, कश्मीर, कुब्जामार, मथुरा, गङ्गा-द्वार, शालग्राम, गोवर्धनाचल, पिण्डार्का, शंखोद्धार, कुरुक्षेत्र, यमुना, सोन, पूर्वसागर, गङ्गा-सागर-संगम, देविका नदी, प्रयाग, बद्रिकाश्रम, दक्षिण समुद्र, द्वारिका, महेन्द्रादि, अर्बुद, अश्वतीर्थ, हिमाचल, विपाशा, नैमिष, जम्बूमार्ग, सैन्धवारण्य, सिन्धु-सागर-संगम, सहयाद्रि, माधवन् तथा विन्ध्याचल।[२]

कपिल उपपुराण में भी राजा सत्यजित के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कपिल मुनि अनेक तीर्थ-स्थानों की महिमा बताते है। उत्कल प्रदेश-नीलांचल, जगन्नाथ पुरी, वाराणसी, मैत्रेयवन, एकाम्रक तथा कपिल-तीर्थ जैसे पवित्र तीर्थ-स्थानों का उल्लेख करते बताया गया है कि उनके स्मरण मात्र से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है।

**एषां स्मरण मात्रेण कल्मषा यान्ति वै क्षयम्।**[३]

---

[१] क्रिया.सार,अ.४/४-५

[२] वि.ध.पु.अ.३५-३६

[३] क.उ.पु.अ.१/६

इस उपपुराण के बारहवें अध्याय में सब तीर्थों में विशिष्ट, बिन्दु सरोवर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस तीर्थ में देवी-दर्शन से मनुष्य को वैष्णव-पद की प्राप्ति होती है।

कामगेन विमानेन वैष्णवं पदमाप्नुयात्।
श्रेष्ठं सर्व तीर्थानां बिन्दुद्भवमुदाहृतम्।।[१]

यहाँ कामग (अपनी इच्छानुसार चलने वाला) विमान से मनुष्य वैष्णव-पद को प्राप्त करता है। बिन्दुद्भव क्षेत्र सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसी प्रकार तेरहवें अध्याय में एकाम्रक तीर्थ का माहात्म्य बताते हुए कहा गया है।

एकाम्रकं महापुण्यं सर्वक्षेत्राधिकं फलम् ।
कामदं मोक्षदं चैव सर्व पुण्य विवर्धनम् ।।[२]

यह एकाम्रक परम पुण्यदायक तथा अन्य सब क्षेत्रों से अधिक फलप्रद है। यह काम तथा मोक्षदायक है और सब पुण्यों को बढ़ाने वाला है।

दान की महिमा के प्रसंग में 'विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण ' में भी अनेक पतितपावन तीर्थों का वर्णन किया गया है।[३]

उपपुराणों में तीर्थ-महिमा वर्णन का उद्देश्य है कि जन-साधारण के हृदय में तीर्थाटन के प्रति रुचि जागृत करना, क्योंकि तीर्थाटन से दान, स्नान-संयम, कष्ट-सहिष्णुता आदि की भावना उत्पन्न होती है, जिनके फलस्वरूप धर्मिक भावना का संचार होता है। परलोक सुधारने में सहायता मिलती है, स्वर्ग तथा

---

[१] क.उ.पु.अ.१२/२१
[२] क.उ.पु.अ.१३/५
[३] वि.ध.पु.अ.३००/२५-२६

मोक्ष की प्राप्ति होती है। देश के कोने-कोने में तीर्थों पर जाने से देशानुराग की भावना उत्पन्न होती है। लगभग सभी उपपुराणों में न्यूनाधिक रूप से तीर्थाटान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

उपपुराण जन-साधारण को इन दिव्य धामों पवित्र तीर्थों की ओर इस लिए आकृष्ट करते है ताकि वे यदा-कदा तीर्थ-यात्रा के द्वारा, दान-पुण्य के द्वारा कुछ श्रेष्ठ कर्म करने की ओर प्रवृत्त हो, उनमें सद्वृत्तियों का उदय हो। दिव्य जिवन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देना - यही उपपुराणों के महान लक्ष्य है।

पतित-पावनी नदियाँ : पुराणों तथा उपपुराणों में नदियों की महिमा का, उनकी पाप-नाशिनी शक्ति का, उनके दिव्य प्रभाव का वर्णन अत्यन्त विस्तर के साथ किया गया है। पुराणों-उपपुराणों के अनुसार नदियाँ मात्र जल-धाराएँ नहीं है, वे केवल सिंचाई के साधन भी नहीं है, अपितु इनका जल मानव-तन को शुचि बनाता है। मानव-मन को पवित्र तथा मानवात्मा को उच्चता प्रदान करता है। गङ्गा,यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, महानदी तथा अन्यान्य सभी नदियाँ हिन्दू-मानस में यह बोध जागृत करती है कि ये दिव्य है, अलौकिक है, इनमें पापों को प्रक्षालित करने की अपार क्षमता है। इन नदियों के तटों पर स्थित असंख्य तीर्थ भी जन-साधारण के हृदय में दिव्यता-पवित्रता की अनुभूति जागृत करते है। इन नदियों में स्नान करने से ही नहीं, इनके स्मरण-मात्र से भी पाप-ताप नष्ट हो जाते है - यह पुराणों, उपपुराणों का सन्देश है।

नदियों के अलौकिक प्रभाव को सूचित करने के लिए पुरणों -उपपुराणों में अनेक रोचक आख्यान-उपाख्यान प्रस्तुत किये गये हैं। 'क्रियायोगसार उपपुराण'

में गङ्गा-माहात्म्य के वर्णन-प्रसंग में धर्मस्व नामक एक ब्राह्मण का आख्यान वर्णित है, जिसमें धर्मस्व द्वारा 'गङ्गा-स्तोत्र' के पाठ तथा फलस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है।[१]

गङ्गा की दिव्य महिमा के वर्णन के सन्दर्भ में ही पद्म गन्धा का वृत्तान्त भी दिया गया है और सत्य-धर्म राज और विजय राज की गङ्गा-स्नान से मुक्ति का वर्णन किया गया है।[२]

इसी उपपुराण में गङ्गा-यात्रा की शास्त्रीय विधि का उल्लेख हुआ है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि उक्त आख्यान-वृत्तान्त बहुत ही रोचक एवं प्रभावशाली हैं जिनके द्वारा उपपुराणकार पाठक के मन में गङ्गा की महिमा को प्रतिष्ठित करना चाहता है।

'कपिल उपपुराण' में महानदी के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया है-
**तत्र देशे द्विज श्रेष्ठः नदीनामुत्तमा नदी।**

**महानदीति विख्याता सर्वपापापनोदिनी।।**

**तस्या नद्यस्तु महात्म्यं कथयामि पुनः पुनः।**

**तस्यां स्नात्वा नर श्रेष्ठो दिव्यलोकं समाप्नुयात्।।**[३]

महर्षि भरद्वाज श्रेष्ठ ब्राह्मणों से कहते है कि इस ओड्र देश के नदियों में उत्तम नदी महानदी विख्यात है जो सभी प्रकार के पापों को नष्ट कर देती है। मैं बार-

[१] क्रिया.उ.पु.अ.६
[२] क्रिया.उ.पु.अ.८
[३] कपिल.उ.पु.अ.२/४-५

बार उस नदी की महिमा का वर्णन करता हूँ कि उस नदी में स्नान करने से मनुष्य दिव्य लोक को प्राप्त करता है।

इसी सन्दर्भ में यहाँ यह भी बताया गया है कि महर्षि पुलः के पुत्र सुकान्ति के द्वारा गङ्गा नदी की स्तुति करने पर गङ्गा ही महानदी के रूप में अवतीर्ण हुई थी।

गङ्गा-रूपी इस महानदी में स्नान करने से, भगवान् शिव और पार्वती के दर्शन करने से, मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर गङ्गा-स्नान के फल को प्राप्त करता है-

महानद्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै पार्वती हरम्।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो गङ्गा स्नान फलं लभेत्।।[१]

कपिल उपपुराण में गङ्गा के नव रूपों का उल्लेख करते हुए उसकी महिमा ज्ञापित की गयी है -

आद्या गोदावरी गङ्गा द्वितीया या पुनः पुनः।
तृतीया कथिता रेवा चतुर्थी जाह्नवी स्मृता।
कावेरी पञ्चमी प्रोक्ता षष्ठी वै गोमती तथा।
कृष्णा च सप्तमी प्रोक्ता ब्राह्मी ह्यष्टम्युदाहृता।
नवमी वै वैतरणी नवधा चेति विश्रुता।।[२]

---

[१] क.पु.अ./३
[२] क.पु.अ.१७/१२-१३-१४

इन श्लोकों में गङ्गा के नव रूपों-नामों का उल्लेख किया गया है। एकाम्रक वन में प्रवाहित होने वाली 'गन्धवती' ही गङ्गा का दसवां नाम है- नाम्ना गन्धवती गङ्गे! भवैकाम्रवने शुभेः।[1]

नरसिंह पुराण ' के ६५-६६वें अध्याय में भगवान् विष्णु को प्रिय लगने वाली नदियों तथा तीर्थों की गणना करते हुए, उनका माहात्म्य भी प्रस्तुत किया गया है।

वितस्था,कावेरी, पयोष्णी, विपाशा, शिवानदी, गोमती, सरस्वती, चर्मण्वती, गोदावरी तथा तुङ्गभद्रा आदि नदियों का माहात्म्य एवं इनके अलौकिक प्रभाव का वर्णन 'नरसिंह पुराण' में किया गया है। यहाँ हम नदियों-तीर्थों के सम्बन्ध में 'नरसिंह पुराण ' के इस कथन को उद्धृत कर रहे है-

> गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः।
> सरयू सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती।।
> कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथार्बुदम्।
> नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरैः ।।[2]

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि उपपुराणों में वर्णित नदियाँ अलौकिक महिमा से मण्डित है। इनमें से कई नदियों की दिव्य उत्पत्ति का वर्णन भी यही सुचित करता है कि ये मात्र जल-धाराएँ नहीं हैं। इनके भौतिक

[1] कपिल उपपुराण अ.१७/२०
[2] नरसिंह पुराण अ.१६६/२-३

एवं भौगोलिक महत्त्व के साथ-साथ ये मानव-जीवन को ऊँचे आदर्शों एवं सद्विचारों की ओर भी अग्रसर करती है।

इनमें पापापहरण की भी अपार क्षमता है। भारत की ये नदियाँ पतित-पावनी है। 'पद्मपुराण' के स्वर्गखण्ड में इन नदियों को विश्व की माताएँ तथा महान फलों को देने वाली कहा गया है-

**विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः।**[१]

उपपुराणों में दान-महिमा का वर्णन- किसी सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक 'महदनुष्ठान' के लिए दी जाने वाली आर्थिक साहायता अथवा किसी प्रकार के प्रत्युपकार की इच्छा के बिना, निष्काम या सकाम भाव से किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति- हेतु जो धन या पदार्थ सदा-सर्वदा के लिए दे दिया जाय-उसे 'दान' कहते है। दान देने में या तो श्रद्धा की भावना प्रबल होती है अथवा करुणा व दया की भावना का प्राधान्य रहता है।

दान देते समय दाता के मन में यह भावना तो अवश्य रहती है कि वह कोई श्रेष्ठ कार्य कर रहा है। श्रेष्ठता की यह अनुभूति निश्चय ही मनुष्य की उच्चता की भावना को जागृत करती है। भावनाओं में उत्कर्ष का उदय, मानव को श्रेष्ठ बनाता है, महान् बनाता है। दान मनुष्य को महानता की ओर अग्रसर करने का

---

[१] पद्मपुराण, स्वर्ग खण्ड ६/३२

एक महत्त्वपूर्ण साधन है। पुराणों-उपपुराणों में दान की महिमा के विषय में असंख्य आख्यान-उपाख्यान प्रस्तुत किये गये हैं।

पुराणों-उपपुराणों में दान-महिमा के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है कि दान किसे देना चाहिए, दान-प्राप्ति के लिए कौन सत्पात्र है, कौन योग्याधिकारी है। दान देने के लिए विशेष तिथियों-पर्वों, उत्सवों का भी उल्लेख किया गया है।

उपपुराणों में यह भी बताया गया है कि किस स्थान विशेष पर दिया गया दान अधिक शुभ एवं अधिक फलप्रद होता है। तीर्थों और ब्रतों के साथ दान की भी चर्चा पुराणों- उपपुराणों में विस्तार से की गयी है।

'कपिल उपपुराण' में कहा गया है कि कार्तिक मास में व्रती व्यक्ति के क्षुधार्त जनों के लिए अन्न दान करना चाहिए। अन्न प्रद क्षेत्र में अन्न दान से व्यक्ति मुक्ति को अपने हाथ में कर लेता है। श्रेष्ठ तीर्थों में अन्न दान सभी दानों में विशेष माना गया है, क्योंकि अन्नदेने वाला सभी वस्तुओं का दान देने वाला होता है।

अन्न-दान से श्रेष्ठ कोई अन्य दान नहीं है। गज, अश्व, रथ, दान से भी अन्न-दान विशेष है। अतः शिव के स्थान पर सब समय अन्नदान करना चाहिए-

गते तु कार्तिके मासे संदिक्ष्या व्रतचारिणः।
क्षुधार्तिभ्योऽन्नदानंच कर्तव्यं व्रतिना सदा।।

अन्यतीर्थाद् विशिष्टं हि पुण्यं नूनमुदाहृतम्।

तस्तादन्नप्रद क्षेत्रं मुक्तिः तस्य करे स्थिताः।।

अन्नं प्रतिदिनं विप्राः दातव्यं पुण्यमिच्छता।

सर्वन्तु विफलं तस्य क्षेत्रेऽस्मिन विमुखे तिथौ।

सर्वदानादन्नदानं विशेषं समुदाहृतम्।

तस्माद् विप्राः क्षेत्रवरे ह्यन्नदः सर्वदानन्दः।

अन्नदानात् परं दानं न भूतो न भविष्यति।

गजाश्वरथ दानेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते।।,

अन्नदं सर्वदं प्राहुः पूर्व विद्या विचक्षणाः।

अन्नदानं सदा काले कर्तव्यं शिव सद्मनि।।[१]

विष्णुधर्मोत्तरउपपुराण' में दान की प्रशंसा एवं महिमा के वर्णन के साथ-साथ दान देने के लिए उपयुक्त समय, दान के सत्पत्र (योग्यव्यक्ति) तथा दान देने के विशिष्ट स्थानों की भी चर्चा की गयी है। अघ्याय ३००-२५-२६ श्लोकों में कहा गया है कि इन स्थानों पर दिया गया दान और भी अधिक मङ्गलमय तथा विशेष फलप्रद होता है।

पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिष, धर्मारण्य, गया, अमरकण्टक, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत, कनखल, शालिग्राम, वाराणसी, सरस्वती, गङ्गा-सागर-सङ्गम, सिन्धु-सागर-सङ्गम, महालय, केदार, भृगुतुङ्ग, मानस, उत्तर मानस,तथा दधि तीर्थ। इसी उपपुराण के ३३वें अध्याय में विद्या दान की

---

[१] कपिल उ.पु. अ.१२/८२-८७

महिमा बतायी गयी है। विद्या दान के अन्तर्गत वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, सिद्धान्त तथा अन्य शास्त्रों , शिल्प तथा धनुर्वेद की शिक्षा देने का उल्लेख किया गया है। इसी अध्याय में गोदान, महिषदान, दधि,दुग्धदधिदान तथा कन्यादान की महिमा का भी वर्णन किया गया है। दान-महिमा का विस्तार से वर्णन 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में किया गया है।

'विष्णुधर्मउपपुराण' में पाँच अध्यायों (८५-८८-९१) में गोदान, तिलधेनुदान, घृत धेनु दान , जल धेनु दान की महत्ता एवं फलप्रद शक्ति का उल्लेख किया गया है।[१]

दान के स्थान, पात्र तथा दान देने की शास्त्रीय-विधि का भी वर्णन इन अध्यायों में किया गया है।[२]

'क्रियायोगसार ' उपपुराण में भी दान-दक्षिणा की महिमा का वर्णन करने के साथ-साथ कई रोचक एवं प्रभावशाली आाख्यान भी दिये गये है।

सर्वज्ञान नामक एक ब्राह्मण का वृत्तान्त, हस्तिनापुर निवासी रति-विदग्धा नामक वैश्या, क्षेमकरी नामक ब्राह्मणी तथा हरि शर्मा नामक ब्राह्मण के वृत्तान्तों में दान के कारण इनको उत्तम लोकों की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है।[३]

ब्रह्मा जी द्वारा दान के पात्र तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के दानों का वर्णन किया गया है। इस उपपुराण में जल और अन्न-दान की विशेष महिमा वर्णित है।

---

[१] विष्णुधर्म. अ. ८५-८८

[२] विष्णुधर्म.अ. ९१

[३] क्रियायोगसार उपपुराण. अ. ४

'क्रियायोगसार' का कथन हम विशेष रूप से उद्धृत कर रहे है- दानाद्धनं च विद्या च वर्धते प्रतिवासरम्।[१]

स्पष्ट है कि समाजोपयोगी इन कार्यों को धार्मिक रूप देकर इन उपपुराणों के रचयिता सब मनुष्यों को ऐसे ही श्रेष्ठ कार्यों की ओर प्रेरित, उन्मुख करना चाहते है।

'क्रियायोगसार' उपपुराण में भी अश्वत्थवृक्ष की महिमा का वर्णन हुआ है। भगवान् विष्णु धनन्जय नामक एक ब्राह्मण को कहते है कि अश्वत्थ' की शाखा को काटकर तुमने मानों मुझे ही काटा है। वस्तुतः अश्वत्थ को यहा विष्णु रूप में माना गया है। वृक्षों को काटा नही जाना चाहिए इस विषय में यह संवाद कितना महत्वपूर्ण है। तुलसी और धातृ वृक्षों की पूजा उपासना का वर्णन भी 'क्रियायोगसर में किया गया है।[२]

नरसिंहपुराण के ३१वें अध्याय में (श्लोक ८७) तुलसी की महिमा का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार ३४वें अध्याय (श्लोक १९-२३) में भी तुलसी की पूजा-अर्चना का उल्लेख किया गया है।[३]

वृक्षों-पौधों की पूजा- उपासना के द्वारा उपपुराणों में यह स्पष्ट किया गया है कि हमारे इस कार्य से वृक्षों की, पौधों की रक्षा होती है जो पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यन्त आावश्यक है। 'बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है कि वैष्णव के गृह में तुलसी का पौधा अवश्य होना चाहिए जिसे वह प्रतिदिन नमस्कार

---

[१] क्रियायोगसार, अ. ४/३०

[२] क्रियायोगसार अ. २३/३३-२८

[३] नरसिंह पुराण अ. ३१/८७

करे और भक्ति-भावना से उसकी पूजा करे। तुलसी-पत्र को कान पर धारण करना भी एक धार्मिक कृत्य माना गया है।

प्रायश्चित्त-विधान 'बृहन्नारदीय पुराण' के २८वे अध्याय में प्रायश्चित्त का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में तीन प्रकार की 'सुरा' तथा ग्यारह प्रकार की मदिराओं का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि किसी भी वर्ण के व्यक्तियों-स्त्री-पुरुषों को इनका सेवन नहीं करना चाहिए। यहाँ तक की इन मदिराओं को छूना भी नहीं चाहिए। यदि औषधि के रूप में भी कभी मदिरा-सुरा का पान करना पड़े तो इस पाप के प्रक्षालन के लिए 'चन्द्रायण' व्रत करना चाहिए।[१] इसी प्रकार गुरूपत्नी-गामी तथा शूद्र-स्त्री के साथ सहवास करने वाले व्यक्ति को तीन वर्षों तक प्राजापत्य व्रत से प्रायश्चित्त करना चाहिए।[२]

चोरी करने का प्रायश्चित्त प्राणायाम तथा गायत्री-मन्त्र के जप से किया जाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य कई प्रकार के पाप-कर्मों के प्रायश्चित्त का विधान 'बृहन्नारदीय पुराण में किया गया है।

पाराशरोपपुराण' के १३वें १४वें अध्यायों में प्रायश्चित्त-विधान की चर्चा की गयी है। यहाँ सुरापान का प्रायश्चित्त गोमूत्र-पान करने को बताया गया है। गोमूत्र को अग्नि वर्ण बनाकर पीने से इस पाप का प्राश्चित्त होता है।[३] स्तेय (चोरी) गुरु-पत्नी-गमन आदि के भी प्रायश्चित्त इस उपपुराण में विस्तार से बताये गये है।[४]

वस्तुतः प्रायश्चित्त-विधान की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। पापों के निवारण तथा आत्म-शुद्धि के लिए यहाँ प्रायश्चित्त करने का विधान

---

[१] बृहन्नारदीय पुराण अ. २८/२५

[२] बृहन्नारदीय पुराण अ. २८/६०

[३] पाराशरोपपुराण अ.१३/१०-११

[४] पाराशरोपपुराण. अ.१३/१४-१६

रहा है। स्मृति-ग्रन्थों, शास्त्रों, पुराणों- उपपुराणों में इस विषय का सम्यक् वर्णन प्राप्त होता है। पाराशरोपपुराण में पाप-कर्म को दो प्रकार का बताया गया है। बुद्धिपूर्वक किया गया पाप-कर्म तथा अबुद्धिपूर्वक किया गया पाप-कर्म। दोनों प्रकार के पापों का फल मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है, अतः उसे प्रायश्चित्त द्वारा अपने पाप का प्रक्षालन कर लेना चाहिए।

अवश्यमेवभोक्तव्यं पापानां फलमास्तिक।
प्रायश्चित्त विहीनेन प्रायश्चित्तमतश्चरेत्।।[१]

अन्य कई उपपुराणों में भी प्रायश्चित्त का वर्णन प्राप्त होता है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण ' के तृतीय खण्ड के दो अध्यायों (२३४-२३५) में महापापों का निर्देश करते हुए उनके प्रायश्चित्त का भी वर्णन किया है।

२३४वें अध्याय के प्रथम श्लोक में ही यह कहा गया है कि जिस व्यक्ति ने अपने पाप-कर्म का प्रायश्चित्त नहीं किया, श्रेष्ठ पुरुषों को उसके संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

न संसर्ग व्रजेत सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते नरः।[२]

इसके पश्चात् ब्रह्म-हत्या, सुरापान, स्तेय (चोरी) तथा गुरु-पत्नी-गमन जैसे महापातकों की चर्चा करते हुए उनके प्रायश्चित्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

---

[१] पाराशरोपपुराण.अ.१५/१०१

[२] विष्णुधर्मोत्तर.३/२३४/१

तदनन्तर वेद-निन्दा, चुगलखोरी, झूठी गवाही देने-जैसे पापों के प्रक्षालन के लिए प्रायश्चित्त विधान किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि जिस प्रकार 'अपराध' के लिए 'दण्ड' का विधान है उसी प्रकार 'पाप-कर्म' के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है।

अनजाने में हुए पापों के लिए ही प्रायश्चित्त का विधान है। वस्तुतः धर्म-शास्त्रों, स्मृतियों से सम्बन्धित यह विषय पुराणों-उपपुराणों का भी महत्वपूर्ण वर्ण्य-विषय रहा है।

श्राद्ध-कल्प : 'बृहन्नारदीय पुराण के २२वें अध्याय से लेकर २८वे अध्याय तक वर्णाश्रम-धर्म के वर्णन के अन्तर्गत श्राद्ध, प्रायश्चित्त, तिथि-निर्णय आदि विषयों का वर्णन किया गया है। यहाँ पितरों के श्राद्ध की तिथियों, श्राद्ध-कर्म करने की विधि, श्राद्ध में आमन्त्रित किये जाने वाले ब्राह्मणों की पात्रता आदि विषयों की चर्चा की गयी है। श्राद्ध-कर्ता को पितरों के श्राद्ध से प्राप्त होने वाले पुण्य-फल का भी यहाँ निर्देश किया गया है।[१]

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के प्रथम खण्ड के अध्याय १३७-१४४ में श्राद्ध की महत्ता का वर्णन करते हुए अमावस्या तिथि को श्राद्ध करने के विशेष महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

पितरों के भेद (वर्ग-विभाजन) करते हुए, श्राद्ध, कर्म के पितरों पर होनें वाले प्रभाव का उल्लेख भी किया गया है। इसी प्रसङ्ग में यह भी बताया गया है कि वैवस्वत मन्वन्तर में सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने ही (वाराह रूप में) श्राद्ध कर्म को आरम्भ किया था।[२]

---

[१] बृहन्नारदीय पुराण.अ. २२-२८

[२] विष्णुधर्मोत्तर पुराण १/१३९/१०-१९

इसके पश्चात् श्राद्ध-कर्म की शास्त्रीय-विधि का, श्राद्ध में अमन्त्रित किये जाने वाले ब्राह्मणों को दिये जाने वाले विभिन्न भोज्य पदार्थों का , श्राद्ध किये जाने के लिए उचित समय तथा तिथि का निर्देश किया गया हैं।

जो व्यक्ति पंक्तिपावन नहीं है, वे श्राद्ध में भोजन करने के अधिकारी नहीं है- यह बात बहुत बल देकर कही गयी है। पुष्कर, गया, प्रयाग, नैमिष, वाराणसी, प्रभास, कुरुक्षेत्र, गङ्गा-तट, यमुना, नर्मदा, हिमवान् वाराह पर्वत तथा अमरान्तिका जैसे पावन स्थलों, पुण्य सलीला नदियों तथा पवित्र पर्वतों पर किये गये श्राद्ध कर्म का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।[१]

विष्णुधर्मोत्तर के प्रथम खण्ड के १३७वें अध्याय से लेकर १४४वें अध्याया तक 'श्राद्ध कल्प' का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

श्राद्ध के महत्त्व का कई पुराणों-उपपुराणों में विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः श्राद्ध-कर्म के द्वार हम अपने पूर्वजो का पुण्य-स्मरण करते है। जो सभ्यता, जो जाति अपने पूर्वजो को भुला देती है उनकी उपेक्षा करती है, वह जाति अपने अतीत से , अपने इतिहास से पृथक् हो जाती है।

देश के प्राचीन गौरव तथा देश की प्राचीन संस्कति से जोड़ने का साधन है- श्राद्ध-कर्म, अपने पूर्वजो के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की अभिव्यक्ति ।

## उपपुराणों में शाक्त -दृष्टि

उप पुराणों में शाक्त दृष्टि पर विचार करने के पूर्व पुराण के विषय में चर्चा करना समीचिन प्रतीत होता है। क्योंकि वेद मानव मात्र का कर्तव्याकर्तव्य के

[१] विष्णुधर्मोत्तर.१/१४४/१-२३

निर्धारण करने वाला संविधान है,जिसको जानने के लिए चौदह विद्याओं का निर्देश महर्षि याज्ञवल्क्य ने निम्नांकित प्रकार से किया है। जिसमें उन्होंने प्रार्थम्येन पुराण का ही उल्लेख किया है। उनका कथन है कि धर्म अर्थात कर्तव्याकर्तव्य के विवेचन में पुराण,न्याय,मीमांसा,धर्मशास्त्र,वेदाङ्ग,कल्प,शिक्षा,ज्योतिष, निरुक्त,छन्द,व्याकरण,तथा चारों वेदों का समान अधिकार बताया है।

पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमीश्रिताः।
वेदास्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।।[१]

इतना ही नही पद्मपुराण तो वेद के विस्तृत ज्ञान के लिए इतिहास पुराण का ज्ञान अपरिहार्य बताया है। अर्थात इतिहास पुराण के द्वारा ही वेद सम्बन्धी ज्ञान की परिपुष्टि की जानी चाहिए। अन्यथा वेद को इस बात का भय होता है कि अल्पज्ञ हमारा दुरुपयोग करेगें।[२]

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुराण है क्या है,इसकी विषय सामग्री क्या है। अतः विद्वानों ने पुराण शब्द की व्याख्या दो प्रकार से किया है। पुरा भवं इति पुराणम् ’ सायंचिरं प्राह्नप्रगे.[३]

महर्षि यास्क ने भी इस व्युत्पत्तिका समर्थन किया है। यास्क निरुक्त ३/१९ पुरा नवं भवति अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया है,[४]वायु पुराण के अनुसार पुरा का अभिप्राय जो प्राचीन काल में जीवित था।

---

[१] या.स्मृ.उपोद्घात श्लो.३
[२] पुराण परिशीलन पृ.१२
[३] पा.सू.४/३/२३
[४] वायु पुराण १/२०३

यस्मात् पुराह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।

निरुक्तं यस्य यो वेद सर्व पापैः प्रमुच्यते।।

पद्म पुराण में इसकी व्युत्पत्ति कुछ भिन्न है। पुरा परम्परा वष्टि कामयते' अर्थात जो पुरानी परम्परा को जीवित रखने की कामना करता है।[१]

शास्त्रों की ऐसी प्रसिद्धि है कि पुराण की रचना ब्रह्मा ने सबसे पहले किया था। उसके बाद ही उनके चारों मुखों से चारों वेदों का प्रणयन हुआ।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।[२]

भगवान मनु का कथन है कि सभी के नाम तथा कर्म पृथक- पृथक वेद शब्द से ही आदि काल में निर्माण किया गया है।सर्वेषामतु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्,वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे।।[३]

वाक्यपदीयकार श्री भतृहरि ने भी शब्द तत्व से ही जगत की सृष्टि के निर्माण की योजना का समर्थन किया है। वही शब्द तत्व अर्थ भाव से सर्वत्र प्रसारित होता है।

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[४]

जो व्यक्ति किसी वस्तु को बनाना चाहता है स्वभाविक रूप से उसको बनाने के पूर्व वस्तु का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है,जैसे लकडी की कुर्सी बनाने वाला

---

[१] पद्म पुराण ५/२/५३

[२] वायु पु.१/६१, तथा मत्स्य पुराण ५३/३

[३] मनु स्मृति

[४] वाक्य.प.ब्र.का.श्लो.१

कुर्सी बनाने के पूर्व कुर्सी की पूरी लम्बाई चौडाई मोटाई आदि पूर्व रेखा अपने मन में कल्पित कर लेता है। यदि ऐसा नही तो यह उक्ति चरितार्थ होने लगेगी कि विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्। इसीलिए ब्रह्मा ने सृष्टि के पूर्व पुराणों की रचना की ।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में एक ऐसे समाज का उदय हुआ जिसमें पुराणों को लोगों ने गप्प माना और उन्हें अप्रमाणिक माना। इस कार्य में आर्य समाज के विद्वानों ने विशेष भूमिका निभाई । उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण को बोप देव नामक किसी व्यक्ति द्वारा रचित बताया तथा इसका प्रचार प्रसार किया।

हद तो यह है कि निम्नांकित श्लोक में उन्हों ने ह्रास की एक परम्परा बनाडाली।

शास्त्रेषु नष्टा कवयो भवन्ति काव्येषु नष्टा च पुराण पाठाः

तत्राऽपि नष्टा कृषिमाश्रयन्ति नष्टा कृषेः भागवता भवन्ति।।[१]

किन्तु वे लोग भूल गये की पुराण एक विद्या है और यह सनातन सृष्टि विद्या है । जिसे आज का वैज्ञानिक मानने लगा है। किन्तु पूर्व में भारतवर्ष के एक सपूत जगदीश चन्द्र बोस ने इसी विद्या के आधार पर यह सिद्ध ित्र दिखाया है कि पौराणिक विज्ञान ने इसको बहुत पहले ही यह कर दिखाया है कि वृक्षों में भी चैतन्य सत्ता और जीवन के सूत्र विद्यमान है।

---

[१] पुराण परिशीलन पृ.११

पौराणिक विज्ञान यह मानता है कि सृष्टि का आदि प्रवर्तक एक ही तत्व है लोगों ने इसकी भी खिल्ली उडाई किन्तु आधुनिक वैज्ञानिको ने यह खोज निकाला है कि एलक्ट्रोन सृष्टि के मूल में दो तत्व है किन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि इन दोनों तत्वों का मूल भी एक ही है। इसप्रकार आलोचकों के पास कोई प्रमाणिक तर्क नही रहा।[१]

पुराणों की प्राचीनता - नारदीय पुराण में यह उल्लेख है कि पुराणों का ज्ञान हो जाने से चराचर से सम्बन्धित सभी बातों का ज्ञान हो जाता है।

श्रृणुवत्स प्रवक्षामि पुराणानां समुच्चयम्।
यस्मिन्ज्ञाते भवेद्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्।।[२]

ऋग्वेद संहिता में भी पुराण शब्दका उल्लेख हुआ है।[३]

तथा अथर्ववेद में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है ।ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सः,उच्छिष्टाच्यज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रुताः।[४]

अधोलिखित उद्धरणों से यह पूर्णतया प्रमाणित होता है कि पुराण कोई ग्रन्थ न होकर सृष्टि विद्याा का उपकरण था। सृष्टिसे लेकर प्रलय तक ब्रह्माण्ड की जितनी भी क्रियाएँ है इस सबका समावेशअधोलिखित उद्धरणों में समाहित है। ये सभी ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन है और आज भी उनके काल का सम्यक निर्धारण नही हो सका। महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि इतिहास,पुराण,नाराशंसी आदि

---

[१] पुराण परिशीलन पृ.७
[२] नारदीय पु.१/९२/२१
[३] ऋ.वेद ३/५८/६ तथा १०/३०/६
[४] अथर्ववेद ११/७/९-१०

विद्याएँ पितरों को तृप्त करने के लिए उन्हें समर्पित की जाती थी। और इन विद्याओं के पाठ से उन्हें अत्यन्त तृप्ति मिलती है।

इतिहासस्य च सैव पुराणस्य च गाथानाञ्च , नाराशंसीयाञ्च प्रिय धाम भवति य एवं वेद।[1]

**वाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्चगाथीकाः।**
**इतिहासाश्चां तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्।।[2]**
**वेदाथर्व पुराणानि सेतिहासानि शक्तितः।**
**जपयज्ञ प्रसिद्ध्यर्थं विद्यायाध्यात्मकिं जपेत।।[3]**

इतने प्राचीन उद्धरणों के प्राप्त होने पर भी भारतीय इतिहास के मध्यकाल में कुछ विद्वानों ने पुराण पर आक्षेप किया है। जो समीचीन प्रतीत नही होता।

राजकुलम नामकी एक पुस्तक में यह उल्लखित है कि सम्पूर्ण भुवन का जिस प्रकार से किया गया है, उसका आधार पुराणों में उद्धृत भुवन कोष ही है।

पुराणमिव जथाविभागावस्थापित सकल भुवन कोषम्,[4] इतना ही नही पुराण प्रवचन की एक अनवच्छिन्न परम्परा है जो अनादि काल से प्रारम्भ हुई जिसके प्रवर्तक वेदव्यास जी थे। उनके पश्चात पराशर, सूत आदि विद्वानों ने इसके प्रवचन का क्रम जीवित रखा और आज भी शिव पुराण,भागवत पुराण,देवी पुराण,आदि पुराणों की प्रवचन परम्परा वायु पुराण में उल्लेख है कि सृष्टि काल में पुराणों से जो बहिर्गत होता है, उसी को संहार काल में पुराण पुनः निगल जाते है।

---

[1] अथर्ववेद १५/१/६
[2] यास्कस्मृ.१/४५
[3] यास्कस्मृ.१/१०१
[4] राजकुलं उद्धृत पुराण विमर्श बलदेव उ.पृ.३

अतश्च संक्षेपमिमंश्रुणुध्वं नारायणं सर्वमिदं पुराणम्।

स सर्ग काले च करोति सर्गः संहार काले च तदन्ति भूयः।[१]

विष्णु पुराण की टीका में विश्वरूप का कथन है कि पुराणों में भगवान सूर्य के अनेक वीथियों का वर्णन है। यथा अगस्त का अत वीथि।[२]

आज भी भागवत तथा विष्णु पुराण में भुवन कोष का भी वर्णन मिलता है।[३]

मत्स्य पुराण की यह उक्ति है कि-

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्।

नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटि प्रविष्टमम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्य वेदास्तस्य विनिसृताः।।[४]

'शत कोटि प्रविष्टर' शब्दावली इस बात का संकेत करती है कि 'पुराण' किसी गम्भीर विद्या का श्रोत है। जिसके आधार पर सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुइ।यह पुराणों में ही मिलता है कि वैवस्वत मन्वन्तर के इस २८वें कलयुग तक २८ व्यास हो चुके है। जो प्रत्येक कलियुग पुराण विद्या का संक्षेपकर ग्रन्थ निर्माण करते रहते है। इससे यह भी सिद्धहोता है कि व्यास या वेदव्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है अपितु यह एक पदवी है अथवा अधिकार का नाम है। जो ऋषि मुनि वेद संहिताओं का विभाजन या पुराणों का संक्षेप करता है तो उसे व्यास या वेदव्यास कहते है।

---

[१] पुराणविमर्श बल.पृ.३०
[२] विश्वरूप की बाल क्रीडा टीका ३/१७५
[३] भा.म.पु.स्क.५
[४] म.पु.अ.३/३/४

धर्मशास्त्रीय पुराण

डॉ. आर.सी.हाजरा के अनुसार ई. सन के प्रारम्भ के पूर्व काल से लेकर ईसवी सन् के आरम्भ तक कुछ ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई जो न तो पुराण थे और न ही स्मृति-ग्रन्थ, ऐसे ग्रन्थशास्त्र।

नारद पुराण,२७/२ कहलाये जो विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के अनुयायियों के द्वारा रचे गये,जिनमें धर्म के नियमों तथा अन्य मानवीय कर्तव्यों का वर्णन किया गया है।

धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, विधि-निषेध, व्रतोपवास, दैनिक जीवन के पालन करने योग्य क्रिया-कलाप, षोडश-संस्कार ,दान की महिमा,श्राद्ध -तर्पण,आदि विषयों का प्रतिपादन उन शास्त्रों में किया गया है।

विष्णुधर्म ,शिवधर्म तथा सौरधर्म -नाम से ज्ञात ऐसे ही शास्त्र हैं जिनमें अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों के नियमों -सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

भविष्य पुराण में विष्णु धर्मादि शास्त्राणि।[१] के प्रयोगों में भी यह स्पष्ट है कि तत्कालीन धर्म-सम्प्रदायों में ऐसे शास्त्रों की रचना हुई थी।

---

[१] भविष्य पुराण ,खण्ड१,अ.१/१७

## शाक्तउपपुरणों की उत्पत्ति

पुराणों के ही समान कुछ उपपुराणों में भी शक्ति या देवी की पूजा-अर्चना का वर्णन कियागया है। ऐसे उपपुराणों को शाक्त उपपुराणों के वर्ग में रखा जा सकता है। शाक्त उपपुराणों के अन्तर्गत जिन ग्रन्थों की गणना की जा सकती है-

वे अधोलिखित हैं- कालिका पुराण, देवी पुराण, महाभागवत, नन्दीपुराण, बृहन्नन्दिकेश्वर पुराण, शारदा पुराण तथा देवीभागवत।

कालिका (उपपुराण )१८उपपुराणों में से एक है। यह शाक्त सम्प्रदाय का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ है। कालिका या काली-पुराण यद्यपि एक उपपुराण है तथापि इसे पुराण ही लिखा-कहा गया है। इसे शाक्तों का आधिकारिक एवं प्रतिनिधि उपपुराण कहा जाता है। परवर्ती निबन्धकारों ने इस पुराण को प्रचुर रूप में उद्धृत किया , जो इसके महत्व का सूचक है। नीलांचल पर स्थित कामाख्या देवी को इसमें शक्ति का प्रतिनिधि अथवा प्रतीक माना गया है। डॉ. आर.सी.हाजरा का मत है कि काली पुराण तथा कालिका पुराण दो पृथक ् -

पृथक ्‌ पुराण हैं और काली पुराण -कालिका पुराण की तुलना में प्राचीनतर है।[१]

डॉ.विश्वनारायण शास्त्री डॉ.हाजरा के मत से सहमत नहीं हैं। वह लिखते हैं- we do not subscribe to this view and hold that kalika puran and kali puran is the same work referred to by these names.[2]

हम भी इस दूसरे मत का समर्थन करते हैं। कालिका पुराण को कुछ मुद्रित संस्करणों में कालिका पुराण को कहीं काल पुराण कहा गया है । इस उपपुराण की अनेकानेक हस्त लिखित प्रतियाँ भी देश के विभिन्न ग्रन्थागारों में उपलब्ध हैं। डॉ.विश्वनारायण शास्त्री ने ऐसी बीस हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है।[३]

कूर्मपुराण में दी गयी उपपुराणों की सूची में कालिका पुराणकी गणना १२वें क्रम पर हुई है।[४]

नित्याचार प्रदीप में भी कालिका की गणना १२वें क्रम परही हुई है।[५]

रघुनन्दन-कृत स्मृति-तत्त्व ग्रन्थ के मलमास तत्त्व में भी कालिका पुराण १२वें क्रम पर विद्यमान है।[६] चतुर्वर्ग चिन्तामणि में भी कालिका पुराण को १२वें क्रम पर लिया गया है।[७] स्कन्द पुराण की सौर-संहिता में कालि पुराण (कालकण्ठम्

---

[१] ूल्गो ग्ह ूप र्ल्ज्ल्हैं द्वितीय खण्ड पृ.२४३
[२] र्व्ग्ीं र्ज्ल्हि ग्हूद्ल्मूदह.र्ज्ा १३-१४
[३] र्व्ग्ीं र्ज्ल्हि ग्हूद्ल्मूदह.र्ज्ा १८-२
[४] कू.पु.१/१/१७-२०
[५] नित्याचार प्रदीप पृ.१९)
[६] स्मृति-तत्त्व के भाग १,(७९/२-३)
[७] चतुर्वर्ग चिन्तामणि (भाग २)

) को १२वें क्रम पर रखा गया है किन्तु स्कन्द पुराणके रेवाखण्ड में इसे कालिका नाम से ही १२वें क्रम पर रखा गया है। इसे काली पुराण कहा गया है किन्तु इसका क्रम १२वां ही है।[१]

गरुण पुराण की सूची में कालिका पुराण १२वें स्थान पर गिना गया है। देवी भागवत में कालिका पुराण १०वें क्रम पर है।[२]

बृहद्धर्मपुराण में भी इसका क्रम १०वां है।[३] इनके अतिरिक्त भी जितनी सूचियाँ उपलब्ध हैं,उसमें कालिका पुराण को प्रायः १२वें क्रम पर ही रखा गया है।

कालिका पुराण के रचना-काल के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। डॉ.आर.सी. हाजरा दो कालिका पुराणों का अस्तित्त्व स्वीकार करते हुए प्राचीन कालिका पुराण को ६००ई.के आसपास रचित मानते है। उन्हीं के शब्दों में earlier kalika puran could not have been written earlier than 600 A.D.[4]

जहाँ वह प्राचीन कालिका पुराण की पूर्वसीमा ६०० ई.स्वीकार करते है वहाँ अपर सीमा के सम्बन्ध में कहते हैं- ़he earlier kalika puran should be dated not later than 700A.D.....it is highly probiable that this work was composed during the seventh century A.D.[5]

वर्तमान में प्रचलित कालिका पुराण को डॉ.हाजरा दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में रचित मानते हैं-

---

[१] स्कन्द पुराण के शिव-माहात्म्य खण्ड (१/१३-१८)

[२] देवीभागवत (१/३/१३-१६)

[३] बृहद्धर्मपुराण (१/२५/२३-२६)

[4] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.२४०

[5] studies in the upapuranas. द्वितीय खण्ड पृ.३००

present kalika puran is a work of the tenth or the first half of eleventh century A.D.[1]

इस मत का कारण वह वर्तमान कालिका पुराण पर तान्त्रिक प्रभाव को स्वीकार करते हैं। डॉ.विश्वनारायण शास्त्री किसी प्राचीन कालिका पुराण के अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं करते।

we do not accept the preposterous theory of existence of an earlier kalika puran or kali puran and assert that the extant kalika pura is the only kalika puran known by that title to the scholarly world.[2]

अतः किसी प्राचीन कालिका पुराण के रचनाकाल पर विचार करना ही निरर्थक है। डॉ.विश्वनाथ शास्त्री अनेक अन्तः साक्ष्यों, बाह्य साक्ष्यों, इतिहास, पुरातत्त्व आदि के सहायता से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं- It may safely be said that the kalika purau was complied in the middle of the ninth century.[3]

डॉ.शास्त्री सन् ८३०-८६०ई. के मध्य कालिका पुराण का रचना काल मानने के पक्ष में हैं।[४] कालिका पुराण के रचना स्थल के विषय में डॉ. आर.सी . हाजरा का मत है कि इसकी रचना का रूप (असम)अथवा बंगाल के उस भाग में हुई थी जो असम (कामरूप )के निकटतम स्थान रहा होगा।[५] .

---

[1] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ. २४५

[2] kalika puran introduction.paje.54

[3] kalika puran introduction.paje.67

[4] kalika puran introduction.paje.66

[5] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ. ३००

डॉ.विश्वनारायण शास्त्री तथा अन्य अनेक विद्वान् कामरूप को ही कालिकापुराण का रचना स्थल स्वीकार करते हैं। प्राचीन समयमें असम को प्राग्ज्योतिष कहते थे। पुराणकाल में प्राग्ज्योतिष तथा कमरूप -असम के ये दोनों नाम प्रचलित थे। रामायण-महाभारत में इसे प्राग्ज्योतिष कहा गया है। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में[१] दोनों नामों का उल्लेख किया है।

कालिका पुराण में भी दोनों नाम दिये गये हैं। यहाँ प्राग्ज्योतिष एक नगर के रूप में तथा कामरूप एक क्षेत्र (या पीठ) के रूप में वर्णित है।[२] इस विषय में डॉ. शास्त्री के कथन को हम उद्धृत कर रहे हैं-

it is quite evident that kalika puran. is composed to glorify the goddess kamakhya,identified with yognidra and vishnumaya the primodial force-the source of creation the goddess kamakhya is present on the hill called neelkoot or neelshaile is the shape of yoni,near the modern city of guwahati.[3] कालिका पुराण में कामाख्या देवी की महिमा,भक्ति,शक्ति,उपासना का ही वर्णन हुआ है। जो कामरूप में स्थित है। अतः कालिका पुराण की रचना स्थल कामरूप में होना अत्यन्त स्वभाविक ही है।

डॉ.आर.सी हाजरा ने अपने प्रसिद्ध शोध-ग्रन्थ) studies in the upapuran के दूसरे खण्ड में देवीपुराण का परिचय दिया है,उसमें १२८ अध्याय बताये गये

[१]रघुवंश म.का. (४.८१,८३)
[२] कालिका पुराण अ.३८/१००
[3] kalika puran introduction.paje.55

हैं जैसा कि उपर विवरण दिया गया है गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित देवीपुराण अथवा महाभागवत उपपुराण में मात्र ८१ अध्याय हैं।

इस प्रकार डॉ.हाजरा द्वारा प्रयुक्त संस्करण में ४७ अध्याय अधिक है। उन्होंने वंगवासी ,कलकत्ता द्वारा बंगला वर्णमाला में मुद्रित तथा बंगला भाषा में अनुदित संस्करण का उपयोग किया गया है। इस संस्करण में ७०००-८०००श्लोक बताये गये हैं। इसके वक्ता-स्रोता भी उपर्युक्त संस्करण (गीताप्रेस)से भिन्न हैं।

वशिष्ठ जी ने इस पुराण के चार पादों का उल्लेख किया है। इसके प्रथम पाद को त्रैलोक्य-विजय,शीर्षक दियागया है जिसमें देवी के प्रादूर्भाव तथा सृष्टि-रचना का वर्णन हुआ है।

द्वितीय पाद में त्रैलोक्य अभ्युदय शीर्षक के अन्तर्गत शक्र (इन्द्र) की कथा,दुन्दुभि-वध,घोर नाम के असुर द्वारा तपस्या तथा विष्णु भगवान् से वर प्राप्ति,देवी का विन्ध्याचल में निवास (जिसके कारण वह विन्ध्यवासिनी कहलाई) घोर का महिषासुर रूप में परिवर्तन,देवी द्वारा महिषासुर-मर्दन आदि की कथा द्वितीय पाद में वर्णित हैं। उसके तृतीय पाद में शम्भ-निशुम्भ मंथन का प्रसंग वर्णित है,चौथे पाद को देवासुसर संग्राम कहा जा सकता है जिसमें कामदेव को भस्म किये जाने, उमा (पार्वती) शिव के विवाह,कार्तिकेय का जन्म,नृपवाहन तथा चित्राङ्गद नामक राजाओं के वृतान्त आदि का वर्णन किया गया है। स्पष्ट है कि देवी पुराण के इस संस्करण में पूर्व-वर्णित देवी पुराण से भिन्नता है। बंगला संस्करण के तृतीय पाद में वर्णित घटनाओं,वृतान्तों में से अधिकांश गीताप्रेस वाले संस्करण में भी उपलब्ध हैं।

बंगला संस्करण का प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से हुआ है-

**नमस्कृत्य शिवं देवी सर्वभागवतां शुभाम्।**

**पुराणं संप्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा।।**[१]

गीताप्रेस के संस्करण में प्रथम श्लोक इस प्रकार है-

**देवेन्द्रमौलि मन्दारमकरन्द कणारुणाः।**

**विध्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवाः।**[२]

डॉ. आर.सी हाजरा ने सम्पूर्ण देवीपुराण का अध्यायानुसार संक्षिप्त विवरण अपने शोध ग्रन्थ में दिया है जो हमारे द्वारा गीताप्रेस संस्करण के आधार पर दिये गये विवरण से पर्याप्त भिन्न है। वैसे भी जिस संस्करण में ४७ अध्याय अधिक हो ,उसमें अनेक घटनायें,अनेक वृतान्त एवं आख्यान अधिक तो होगें ही ।

पुराणों-उपपुराणों में प्रक्षेप एवं परिहार की प्रवृत्ति एक सामान्य सी बात है। इनमें से बंगवासी प्रेस के संस्करण में प्रक्षेप हुआ है या गीताप्रेस वाले संस्करण में परिहार हुआ हैं- यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

डॉ. आर. सी .हाजरा द्वारा दिये गये अध्यायानुसार विवरण को हम यहाँ नहीं दे रहे है।

---

[१] देवीपुराण अ.१/१,

[२]तत्रैव

देवीपुराण का अधिकतर निबन्धकारों ने अपने ग्रन्थों में प्रचुर उपयोग किया है। इन निबन्धकारों द्वारा देवीपुराण के किस-किस अध्याय को उद्धृत किया गया है , इसका विस्तार पूर्वक वर्णन डॉ. आर.सी .हाजरा ने दिया है।

इन निबन्धकारों का रचनाकाल ,स्थिति-काल प्रायः निश्चित है इस आधार पर देवीपुराण का रचनाकाल ज्ञात करना कठिन नहीं है। दूसरे इस पुराण पर तन्त्र-शास्त्र का भी प्रभाव है, इस आधार पर भी इसके रचना -काल की सीमाएँ निश्चित की जा सकती हैं। इन सभी बाह्य साक्ष्यों के आधार पर डॉ. हाजरा ने देवीपुराण को रचनाकाल की पूर्वसीमा सन् ५००ई.तथा अन्तिम सीमा ८५०ई स्वीकार की है।[१] इस पुराण के कुछ प्राचीन अंश तो छठी शताब्दी में भी लिखे गये होगे।[२]

जहाँ तक इस उपपुराण के रचनाकाल का प्रश्न है डॉ. हाजरा निश्चित-रूप से इसका रचना-स्थल बंगाल को मानते हैं। अपने इस सुनिश्चित मत का उन्होंने अनेक प्रमाणों से समर्थन किया है। डॉ.हाजरा लिखते हैं. As regard the proveance of the dei puran.there is little scope for doubt that it was written in bangal.[3]

देवीपुराण के सभी पाण्डुलिपियों का प्राप्ति-स्थल बंगाल है। देवी पुराण की संस्कृत भाषा -वैसी ही है जैसी बौद्धों ने प्रयोग की हैं। इस प्रकार की भाषा बंगाल में ही प्रचलित थी। देवीपुराण में पूर्वी भारत के स्थानों ,मन्दिरों की चर्चा विशेष-रूप से हुई है। कामाख्या देवी ,कामरूप देश आदि की चर्चा से यह

---

[1] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.७३,७६

[2] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.७८

[3] studies in the upapuranं द्वितीय खण्ड पृ.७९

स्पष्ट है कि इसका उद्भव-स्थल पूर्वी भारत है। एकाम्र पुराण तथा दो-तीन निन्धकारों की रचनाएँ जिन्होंने इस पुराण का उल्लेख किया है,वे उडीसा तथा बंगाल के हैं। अतः इस पुराण की रचना -भूमि बंगाल को ही स्वीकार करना होगा।

हमने गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित देवी पुराण का परिचय देते हुए बार-बार यह लिखा है कि यहीं देवी पुराण ही महाभागवत उपपुराण के रूप में प्रकाशित है। दोनों ग्रन्थों की समानता सूचक भी कई उदाहरण हमने प्रस्तुत किये हैं। डॉ.आर.सी. हाजरा ने अपने शोधग्रन्थ में

ेूल्गे ग्ह ूप ल्ॅर्ज्ल्ॅर्हें द्वितीय खण्ड में महाभागवत का विवेचन किया है। हमारे द्वारा विवेचित देवी पुराण तथा डॉ. हाजरा द्वारा विवेचित महाभागवत दोनों एक ही ग्रन्थ के दो पृथक् - पृथक् नाम हैं।अध्याय सं.विषय विवेचन तथा अन्य सभी बातों में दोनों ने शत-प्रतिशत समानता है।

अतः इस उपपुराण का अलग से परिचय देने का आवश्यकता नहीं है। डॉ. हाजरा महाभागवत उपपुराण का रचना-स्थल भी (देवीपुराण के समान) बंगाल को ही मानते है।[१]

इस उपपुराण का रचनाकल दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी[२] में स्वीकार करते हैं।

द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया के अनुसार भी महाभागवत उपपुराण का रचनाकाल दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी ई. है।[१]

---

[1] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.२७९

[2] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.२८२

ङङङङङ

[1] द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया भाग २ पृ.१८९